देय तिथि	देय तिथि
21-8-80	

नोट – पुस्तक निश्चित तिथि
दण्ड देना होगा।

देवदास

[सामाजिक उपन्यास]

मूल लेखक—
श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक—
…ुत अखौरी गङ्गाप्रसादसिंह, विशारद
भूतपूर्व सम्पादक 'भारत-जीवन'

प्रकाशक—
…ाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक,
इलाहाबाद

जनवरी १९३०

…करण, २०००]

[मूल्य २)

SECOND EDITION

Two Thousand Copies

Printed and Published

by

R. SAIGAL

at

The Fine Art Printing Cottage

28, Edmonstone Road

Chandralok—Allahabad

January

1930

उपहार

भूमिका

बङ्ग-साहित्य के आधुनिक उपन्यास-लेखकों में रवीन्द्र बाबू के बाद शरत् बाबू का ही स्थान है और कुछ लोग तो उपन्यास-लेखन कला में रवीन्द्र बाबू से भी ऊँचा स्थान शरत् बाबू को देते हैं। हिन्दी-साहित्य में जो प्रतिष्ठा और सम्मान प्रेमचन्द्र जी को मिला है, बङ्ग-साहित्य में उससे कम प्रतिष्ठा शरत् बाबू को नहीं प्राप्त है। बङ्गाली शरत् बाबू को वर्तमान युग का श्रेष्ठ उपन्यासकार और भविष्यत् का गौरव समझते हैं। बङ्ग-साहित्य में अब तक जो कुछ था उसे छोड़, जो नहीं था शरत् बाबू ने उसी की सृष्टि की। शरत् बाबू की ललित भाषा में, उनके सजीव चरित्र-अङ्कन में—उनकी प्रत्येक बात में एक विचित्र रस का समावेश रहता है।

शरत् बाबू की भाषा—उनके लिखने की रीति-नीति सम्पूर्णतः उनकी अपनी है। उनकी बातों में एक ऐसा उच्छ्वसित सारल्य, एक ऐसा सकरुण सौन्दर्य रहता है, जो अन्यत्र कहीं भी देखने में नहीं आता। सारल्य और सौन्दर्य के प्रति शरत् बाबू के इस

स्वाभाविक कौशल की, उनके प्रत्येक वाक्य में एक छाप सी लगी रहती है, जो उन्हें अन्य लेखकों से सर्वथा पृथक् रखती है।

शरत् बाबू की एक प्रधान विशेषता यह है कि वे अपने गल्प या उपन्यास में एक भी व्यर्थ की बात नहीं आने देते। साधारणतः देखा जाता है कि उपन्यासों में उपकथा इतनी बढ़ जाती है कि मूल कथा उसके भार से चँप-सी जाती है। किन्तु शरत् बाबू ने अपनी कहानियों में अनावश्यक बातें एक भी नहीं आने दी हैं। अनावश्यक तो दूर रहे, बहुत सी आवश्यक बातें भी नहीं लिखी हैं; लिखी हैं केवल अत्यावश्यक बातें। अस्तु, थोड़े ही स्थान में घटनाओं का इतना आधिक्य रहता है, भावों का इतना प्राचुर्य रहता है, जो अनेक समय सुदीर्घ वर्णन में भी पढ़ने को नहीं मिलता। इस बात का प्रमाण आपको प्रस्तुत पुस्तक में स्थल-स्थल पर मिलेगा और प्रधानतः ग्यारहवें परिच्छेद में देवदास का एकाएक पतन देख कर तो आपको अवश्य खटकेगा, किन्तु शरत् बाबू की यही विशेषता है ; वे अनावश्यक बातें कदापि नहीं लाना चाहते। इसीसे उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह इतना स्पष्ट है कि पढ़ने वाले की आँखों के सम्मुख चित्र-सा खिंच जाता है और बिना ग्रन्थ समाप्त किए उसे छोड़ने की इच्छा नहीं होती।

शरत् बाबू ने जो कुछ अङ्कित किया है, वह बङ्गाल के गृहस्थों का सरल चित्र है, बङ्गालियों के सामाजिक और जातीय जीवन का अनाडम्बर फ़ोटो है। उनकी रचना केवल व्यक्ति-विशेष के सुख-दुःख, आनन्द-वेदना की रचना नहीं है ; किसी विशिष्ट जीवन का नितान्त व्यक्तिगत इतिहास नहीं है। उनकी कहानियाँ किसी एक

विशिष्ट जीवन का आश्रय लेकर समग्र बङ्गाल की आशा, आकांक्षा, अभाव आदि की द्योतिकाएँ हैं। थोड़े में यही कहना उत्तम होगा कि उनमें बङ्गालियों की वास्तविक अवस्था का सच्चा वर्णन है।

पूर्व युग के साहित्य के आदर्श और वर्तमान युग के साहित्य के आदर्श में अब बहुत प्रभेद पड़ गया है। उस प्रभेद को बिना समझे शरत् बाबू के ग्रन्थों के सौन्दर्य को समझना ज़रा कठिन है।

वर्जिल, शेक्सपियर, कालिदास, भवभूति आदि की रचनाओं में हम एक विराट् उच्चता, एक महान् आदर्श का दर्शन पाते हैं। उन्होंने अपने अबाध्य रस-प्रवाह के द्वारा मानव-हृदय की व्यक्तिगत आनन्द-वेदना को लेकर जिन चित्रों को अङ्कित किया है, उनका अमर सौन्दर्य और माधुर्य आज भी उसी भाँति नवीन और मुग्धकर है। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा जिस स्वप्नपुरी का निर्माण किया है, वह उसी युग के लेखकों का काम था।

किन्तु आधुनिक साहित्य का आदर्श और लक्ष्य अब प्राचीन साहित्य के आदर्श से कुछ भिन्न हो गया है। अब केवल व्यक्ति-विशेष के सुख-दुःख, आनन्द-वेदना को ही प्रकट नहीं किया जाता, वरन् किसी विशिष्ट नर-नारी के जीवन को लक्ष्य करके समग्र समाज, समग्र जाति के हृदय-स्पन्दन और चिन्ता-प्रवाह को प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न किया जाता है। समाज के विविध वैचित्र्य और समस्याओं को एक स्थान में मिला कर उसे कला (Art) की सहायता से विश्व के सम्मुख प्रस्फुटित करना ही वर्तमान साहित्य का एक प्रधान विशेषत्व है। इङ्गलैण्ड के एच० जी० वेल्स, फ्रान्स के अना-तोले फ्रान्स, रूस के टॉल्सटॉय, जर्मनी के हाम्पट्म्यान आदि सभी

आधुनिक लेखक हैं, किन्तु अपनी लेखनी द्वारा अपनी जाति और समाज को जिस भाँति चञ्चल कर दिया है, वह अवलोकनीय, प्रशंसनीय और विस्मयकर है। हम लोगों के देश में ऐसे साहित्य की सृष्टि करने वाले सर्व-प्रथम रवीन्द्र बाबू ही हैं।

शरत् बाबू के ग्रन्थों में सामाजिक समस्याओं पर स्थल-स्थल पर प्रकाश डाला गया है। उनकी रचनाओं में आर्त्त और असहायों के प्रति असीम सहानुभूति मिलती है। मनुष्य को केवल मनुष्य होने ही के नाते एक सहज जन्मगत अधिकार है, एक विशिष्ट मर्यादा है, इसका परिचय हम उनकी रचनाओं में प्रचुर रूप से पाते हैं। दीन-हीन और पतित जीवन के मर्मभेदी इतिहास का केवल वर्णन करके ही वे शान्त नहीं हो जाते ; समाज के साथ इन दीन-हीन पतितों का कोई सत्य सम्बन्ध है या नहीं, पतितों के अधःपतन के लिए समाज कुछ उत्तरदायी है या नहीं, यह भी वे हम लोगों के हृदय में बैठाल देते हैं। उनकी अन्य पुस्तकों को छोड़, पाठक इस प्रस्तुत पुस्तक में ही यदि चन्द्रमुखी के चरित्र का ध्यानपूवक अध्ययन करेंगे तो उनसे यह बात छिपी नहीं रहेगी। यथा-स्थान चन्द्रमुखी की पतितावस्था में भी उसके सत्य-प्रेम, उसके हृदय की अकपटता और महानता देख कर हृदय आप ही आप करुणापूर्ण हो जाता है।

आधुनिक साहित्य अधिकांशतः सामाजिक समस्याओं का साहित्य हो गया है, यह किसी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु प्राचीन साहित्य में हम सामाजिक समस्याओं को क्यों नहीं पाते और आधुनिक साहित्य में ही इसे प्रचुर परिमाण में क्यों पाते हैं—यह विचारणीय है।

प्राचीन युग का साहित्य सभा-साहित्य (Court literature) था। वर्जिल, शेक्सपियर, कालिदास, भवभूति इत्यादि सभी राजा-महाराजाओं के सभा-कवि (Court Poet) थे तथा राजतन्त्र युग के सिद्धहस्त साहित्याचार्य थे। इसीसे हम उनके साहित्य में एक राज-जनोचित महान् ऐश्वर्य और आदर्श पाते हैं। इसीसे उस युग में सामाजिक जटिलताओं के रहते हुए भी साहित्य में हम उनका दर्शन नहीं पाते। अस्तु, उस युग में प्रायः आदर्श-मूलक नाटकों और उपन्यासों (Idealistic dramas and novels) की सृष्टि हुई। आधुनिक साहित्यिकों को किसी विशिष्ट व्यक्ति के मनोरञ्जन को ही नहीं देखना है, किसी विशिष्ट व्यक्ति की उन्नति व अवनति का ही विचार नहीं करना है, अब उन्हें सारे समाज के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और मनोरञ्जन का ध्यान रखते हुए साहित्य की रचना करनी पड़ती है। अस्तु, उन्हें विवश होकर समाज की वास्तविक स्थिति को दिखलाना पड़ता है, इसीसे आजकल तथ्यमूलक नाटकों और उप-न्यासों (Realistic dramas and novels) की सृष्टि हो रही है।

समाज और जाति के भीतर जो शक्तियाँ गुप्त रूप से काम कर रही थीं, शरत् बाबू ने उन्हें कला (Art) की सहायता से प्रस्फुटित करके हम लोगों की आँखों के सम्मुख ला रक्खा है। समाज और जातिगत जो समस्याएँ और जटिलताएँ थीं, शरत् बाबू ने उनका विशद रूप से विश्लेषण कर हमें उनके वास्तविक रूप को दिखला दिया है। इसीसे शरत् बाबू की कहानियाँ ऐसी मर्मस्पर्शिणी हैं, उनकी बातें हम लोगों के हृदय में ऐसा घर कर लेती हैं कि फिर निकाले नहीं निकलतीं।

यहाँ पर यह कह देना आवश्यक ह कि हमें साहित्यिकों से सामाजिक समस्याओं के विस्तृत रूप से समाधान की प्रत्याशा नहीं करनी चाहिए। स्पष्ट रूप से समस्याओं का समाधान करना और चाहे जिसका काम हो, साहित्य का नहीं है। समस्याओं की सृष्टि करना तथा उनका विशद और सरल समाधान करना ही यदि साहित्य का प्रधान कार्य माना जायगा, तो इससे साहित्य के आदर्श की सीमा बड़ी ही सङ्कुचित हो जायगी। कवि या लेखक की लेखनी जब अपनी अबाध्य गति से मानवी स्वभाव के स्तर-स्तर को नहीं खोल पाती, प्रकृति के रहस्यागार से पृथक् होकर जब वह किसी एक आदर्श का शासन मान कर चलने लगती है, उसी समय साहित्य प्राणहीन और कृत्रिम हो जाता है। अस्तु, साहित्य को समस्या और समाधान-मूलक बनाना साहित्य-रस के रसिकों को ग्राह्य नहीं है। साहित्य का कार्य है पाठकों के मानस-कल्पना के लिए सामग्री एकत्रित करना ; दर्शन और विज्ञान की भाँति समस्याओं का समाधान करना नहीं। साहित्य का प्रधान कार्य है रस की सृष्टि करना। पूर्व युग में भी साहित्य का यही कार्य रहा और वर्तमान युग में भी यही कार्य है। रसों में सर्व-प्रधान शृङ्गार-रस है और शृङ्गार-रस का अवलम्बन प्रेम है। इसीसे प्रायः सभी उपन्यासों में प्रेम का प्रसार पाया जाता है। अधिकतर स्वाभाविक प्रेम स्त्री-पुरुषों का ही संसार में देखा जाता है। इसीसे प्रायः प्रत्येक उपन्यास के एक प्रधान पात्री और पात्र होते हैं। कुछ इने-गिने उपन्यासों को आप प्रेम-वर्णन-विहीन अवश्य पाएँगे, किन्तु उनमें से अधिकतर नीरस हैं तथा साहित्यिक ग्रन्थों की

श्रेणी में स्थान पाने योग्य नहीं हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी एक प्रेम-मूलक उपन्यास है ; इसके प्रधान पात्र देवदास और पात्री पार्वती हैं। यद्यपि परोक्ष रूप से इस पुस्तक में सामाजिक कुटिलताएँ भी प्रदर्शित की गई हैं, किन्तु पुस्तक का प्रधान वर्णीत विषय है देव-दास और पार्वती के अनन्त प्रेम को दिखलाना। अहा, देवदास और पार्वती के प्रेम को देख कर हृदय भावोन्मत्त हो उठता है और शैली के शब्दों में एकाएक यही कह उठता है कि "यह अनन्त प्रेम-लिप्सा अनन्त तृप्ति में डूबी हुई है।" (It is illimitable thirst plunged in illimitable satisfaction.) इसीसे विवाह न होने पर दोनों ने अपने जीवन को उदासीन की भाँति व्यतीत कर दिया। और जो कुछ है वह एक प्रकार से ठीक ही है, किन्तु इस पुस्तक में देवदास की मृत्यु बड़ी दुःखदायिनी है। भगवान् और चाहे जो कुछ करें, देवदास की ऐसी किसी को मृत्यु न दें।

अस्तु, शरत बाबू की रचनाओं में भी स्पष्ट भाव से किसी समस्या का समाधान नहीं है। इस प्रस्तुत पुस्तक में भी किसी समस्या का समाधान नहीं किया गया है। उनकी कहानियों में सामाजिक समस्याओं की व्यञ्जना बड़े तीव्र रूप से की गई है तथा उनके समा-धान का सङ्केत भी है, किन्तु इतने परोक्ष और प्रच्छन्न रूप में है कि साहित्य की जो प्रधान कला है, वह तनिक भी नष्ट नहीं होने पाई है, वरन् बड़ी ही सुन्दर हो गई है।

मुझे भय है कि कुछ पाठक मेरे कथन को अतिशयोक्ति न समझ लें। किन्तु 'हाथ कङ्गन को आरसी क्या ?' शरत् बाबू की यह एक पुस्तक प्रस्तुत है, इसे ही पढ़ कर आप मेरे कथन की

परीक्षा कर लें! मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक के पढ़ने पर आप मेरी बात में बहुत-कुछ सत्यता पाएँगे और उनकी सब पुस्तकों के पढ़ने पर तो आपकी भी धारणा मेरी सी ही हो जायगी।

कुछ लोग अनूदित ग्रन्थों को देख कर नाक-भौं सिकोड़ने से लग गए हैं, किन्तु यह सर्वथा अनुचित है। किसी भी भाषा की उन्नति बिना अनूदित ग्रन्थों के नहीं हुई है। फिर शरत् बाबू ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के ग्रन्थों के अनुवाद से तो साहित्य का अवश्य लाभ होगा और उसके गौरव की वृद्धि होगी। इसी भावना से प्रेरित होकर शरत् बाबू के इस ग्रन्थ का बङ्ग-भाषा से अनुवाद किया है। शरत् बाबू को भाषा जैसी सरल है, उसका अनुवाद करना वैसा ही कठिन है, फिर भी मैंने हिन्दी-भाषा के मुहाविरे के अनुसार उत्तम अनुवाद करने की चेष्टा की है। इस चेष्टा में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका बतलाना मेरा काम नहीं—पाठकों का है। अन्त में मैं पं० केदारनाथ जी पाठक और श्री० मृत्युञ्जय भट्टाचार्य जी को धन्यवाद देना नहीं भूलूँगा, जिन्होंने इस पुस्तक के अनुवाद में मुझे बड़ी सहायता दी है।

मध्यमेश्वर, काशी
७ माघ, १९८१

—अखौरी गङ्गाप्रसादसिंह

पहला परिच्छेद

एक दिन बैसाख के दोपहर में जब कि चिलचिलाती हुई कड़ी धूप पड़ रही थी और गर्मी की सीमा नहीं थी, ठीक इसी समय मुखोपाध्याय-कुल का देवदास पाठशाला के एक कमरे के एक कोने में स्लेट लिए हुए पाँव फैला कर बैठा था। सहसा वह अँगड़ाई लेता हुआ अत्यन्त चिन्ताकुल हो उठा और पल भर में यह स्थिर किया कि ऐसे सुहावने समय में मैदान में गुड्डी उड़ाने के बदले पाठशाला में क़ैद रहना अत्यन्त दुःखदाई है। उर्वर मस्तिष्क से एक उपाय भी निकल आया। वह स्लेट हाथ में लेकर उठ खड़ा हुआ।

पाठशाला में अभी जलपान की छुट्टी हुई थी। लड़कों का दल तरह-तरह का खेल-कूद और शोर-गुल करता हुआ, पास के पीपल के पेड़ के नीचे गुल्ली-डण्डा खेलने लगा। देवदास ने एक बार उस ओर देखा। जलपान की

छुट्टी उसे नहीं मिलती थी ; क्योंकि गोविन्द पण्डित ने कई बार यह देखा है कि एक बार पाठशाला के बाहर जाने पर फिर लौट आना देवदास बिलकुल पसन्द नहीं करता। उसके पिता की भी आज्ञा नहीं थी। अनेक कारणों से यही निश्चय हुआ था कि इस समय से वह छात्र-सरदार (Monitor) भूलो की देख-भाल में रहेगा।

अभी घर में पण्डित जी दोपहर की थकावट दूर करने के लिए आँख मूँद कर सोए थे, और छात्र-सरदार भूलो, एक कोने में हाथ-पाँव फैला कर एक बेञ्च पर बैठा था और बीच-बीच में बड़ी उपेक्षा के साथ कभी लड़कों के खेल को और कभी देवदास और पार्वती को देखता जाता था। पार्वती को पण्डित जी के आश्रय और निरीक्षण में आए अभी कुल एक महीना हुआ है। पण्डित जी ने सम्भवतः इसी थोड़े समय में उसका ख़ूब जी बहलाया था, इसी से वह एकाग्र मन से धैर्यपूर्वक सोए हुए पण्डित जी का चित्र 'बोधोदय' के अन्तिम पृष्ठ पर स्याही से खींच रही थी और दक्ष चित्रकार की भाँति विविध भाव से देखती थी कि उसके बड़े यत्न का वह चित्र आदर्श से कहाँ तक मिलता है। अधिक मिलता हो, ऐसी बात नहीं थी, पर पार्वती इसी से यथेष्ट आनन्द और आत्म-सन्तुष्ट लाभ करती थी।

इसी समय देवदास स्लेट हाथ में लेकर उठ खड़ा

हुआ और भूलो को लक्ष्य करके कहा—सवाल हल नहीं होता।

भूलो ने शान्त और गम्भीर मुख से कहा—कौन सा सवाल ?

"इबारती...!"

"स्लेट तो देखूँ।"

उसके सब काम स्लेट हाथ में लेने मात्र से हो जाते थे। देवदास उसके हाथ में स्लेट देकर पास में खड़ा हुआ। भूलो यह कह कर लिखने लगा कि एक मन तेल का दाम अगर चौदह रुपए नौ आने तीन पाई होता है तो...?

इसी समय एक घटना घटी। हाथ-पाँव से हीन बेञ्च के ऊपर छात्र-सरदार, अपनी पद-मर्यादा के उपयुक्त आसन चुन कर यथानियम आज तीन वर्ष से बैठता आता है। उसके पीछे एक चूने का ढेर लगा हुआ था। इसे किसी समय पण्डित जी ने सस्ती दर से ख़रीद कर रक्खा था। सोचा था कि दिन लौटने पर इससे एक पक्का मकान बनवाएँगे। कब वह दिन लौटेगा, यह मैं नहीं जानता, परन्तु उस सफ़ेद चूने को वे बड़े यत्न और सावधानी के साथ रखते थे। संसार से अनभिज्ञ, अपरिणामदर्शी कोई दरिद्र बालक इसका एक कण भी नष्ट नहीं करने पाता था। इसीलिए प्रिय-पात्र और अपेक्षाकृत वयस्क भोलानाथ को इस सयत्न सञ्चित वस्तु की

सावधानतापूर्वक रक्षा करने का भार मिला था, और इसी से वह बेञ्च पर बैठ कर उसे देखा करता था।

भोलानाथ लिखता था, एक मन तेल का दाम अगर चौदह रुपए नौ आने तीन पाई हैं तो...? 'अरे बाप रे बाप' इसके बाद बड़ा शोर-गुल मचा। पार्वती ज़ोर से ठहाका मार कर ताली बजा कर ज़मीन पर लोट गई। सोए हुए गोविन्द पण्डित अपनी लाल-लाल आँखें मीचते हुए घबड़ा कर उठ खड़े हुए; देखा कि पेड़ के नीचे लड़कों का दल क़तार बाँध कर एक साथ 'हो-हो' शब्द करता हुआ दौड़ा चला जा रहा है और उसी समय दिखाई पड़ा कि टूटे बेञ्च के ऊपर एक जोड़ा पाँव नाच रहा है; और चूने में ज्वालामुखी का स्फोट सा हो रहा है। चिल्ला कर पूछा—क्या है—क्या है—क्या है रे ?

उत्तर देने के लिए केवल पार्वती थी। पर वह उस समय ज़मीन पर लेटी हुई ताली बजा रही थी। पण्डित जी का विफल प्रश्न क्रोध में परिवर्तित हो गया—क्या है—क्या है—क्या है रे ?

इसके बाद श्वेत मूर्त्ति भोलानाथ चूना ठेल कर खड़ा हुआ। पण्डित जी ने और चिल्ला कर कहा—शैतान का बच्चा, तू ही है—तू ही उसके भीतर है ?

"आँ—आँ—आँ—"

"फिर ?"

"देवा साले ने—ठेल कर—आँ—आँ—इबारती—"

"फिर हरामज़ादा !"

परन्तु क्षण भर में सारा व्यापार समझ कर चटाई पर बैठ के पूछा—देवा तुझे धक्के से गिरा कर भागा है ?

भूलो अब और भी रोने लगा—"आँ—आँ—आँ—" इसके बाद कुछ क्षण चूने की झाड़-पोंछ हुई, किन्तु श्वेत और श्याम रङ्ग के मिल जाने के कारण छात्र-सरदार भूत की भाँति मालूम पड़ने लगा और तब भी उसका रोना बन्द नहीं हुआ।

पण्डित जी ने कहा—देवा धक्के से गिरा कर चला गया, अच्छा !

भूलो ने कहा—आँ—आँ—आँ—

पण्डित जी ने पूछा—लड़के कहाँ हैं ?

उसके बाद लड़कों के दल ने रक्त-मुख हाँफते-हाँफते लौट कर ख़बर दी कि देवा को हम लोग नहीं पकड़ सके। उफ़ ! कैसा ताक के ढेला मारता है !

"पकड़ नहीं सके ?"

एक और लड़के ने पहले कही हुई बात को दुहरा कर कहा—"उफ़—कैसा !"

"थोड़ा चुप रहो।"

वह दम घोट कर बग़ल में बैठ गया। निष्फल क्रोध से पहले पण्डित जी ने पार्वती को ख़ूब धमकाया, फिर

भोलानाथ का हाथ पकड़ कर कहा—चल, एक बार ज़मीन्दार की कचहरी में कह आवें।

इसका तात्पर्य यह है कि ज़मीन्दार मुखोपाध्याय के निकट उनके पुत्र के आचरण की नालिश करेंगे।

उस समय अन्दाज़न तीन बजे थे। नारायण मुखोपाध्याय जी बाहर बैठ कर गड़गड़े पर तमाखू पीते थे और एक नौकर हाथ में पङ्खा लेकर हवा झल रहा था। छात्र के सहित असमय में पण्डित जी के आगमन से विस्मित होकर उन्होंने कहा—क्या गोविन्द हैं?

गोविन्द जाति के कायस्थ थे, झुक कर प्रणाम किया और भूलो को दिखा कर सारी बातें सविस्तार वर्णन कीं। मुखोपाध्याय जी ने विरक्त होकर कहा—तब तो देवदास को हाथ से बाहर जाता हुआ देखता हूँ।

"क्या करूँ, अब आप ही आज्ञा दें।"

ज़मीन्दार बाबू ने सटक रख कर कहा—वह किधर गया?

"क्या जानूँ? जो लोग पकड़ने गए, उनको ढेलों से मार भगाया।"

वे दोनों आदमी कुछ क्षण तक चुप रहे। नारायण बाबू ने कहा—घर आने पर जो कुछ होगा, करूँगा।

गोविन्द छात्र का हाथ पकड़ कर पाठशाला लौट आए तथा मुख और आँख की भावभङ्गी से सारी पाठशाला

को धमका कर प्रतिज्ञा की कि यद्यपि देवदास के पिता उस गाँव के ज़मीन्दार हैं, फिर भी वे उसको अब पाठशाला में नहीं घुसने देंगे। उस दिन पाठशाला की छुट्टी समय से कुछ पहले ही हो गई; जाने के समय लड़कों में अनेकों प्रकार की आलोचनाएँ और प्रत्यालोचनाएँ होती रहीं।

एक ने कहा—उफ़! देवा कितना मज़बूत है!

दूसरे ने कहा—भूलो को अच्छा छकाया।

"उफ़! कैसा ताक कर ढेला मारता था।"

एक दूसरे ने भूलो का पक्ष लेकर कहा—भूलो इसका बदला लेगा, देखना।

"हिश! वह अब पाठशाला में थोड़े ही आएगा जो कोई बदला लेगा।"

इसी छोटे दल के एक ओर पार्वती भी अपनी पुस्तक और स्लेट लेकर घर आ रही थी। पास के एक लड़के का हाथ पकड़ कर पूछा—मणि, देवदास को क्या पण्डित जी सचमुच ही अब पाठशाला नहीं आने देंगे?

मणि ने कहा—नहीं, किसी तरह नहीं आने देंगे!

पार्वती हट गई, उसे यह बातचीत बिलकुल नहीं सुहाई। पार्वती के पिता का नाम नीलकण्ठ चक्रवर्त्ती है। चक्रवर्ती महाशय ज़मीन्दार के पड़ोसी हैं अर्थात् मुखोपाध्याय जी के विशाल भवन के बग़ल में ही उनका छोटा सा पुराने क़िते का मकान है। उनके बारह बीघे खेती-बारी

है, दो-चार घर जजमानी है, ज़मीन्दार के घर से भी कुछ मिल जाया करता है। उनका परिवार सुखी है और दिन अच्छी तरह से कट जाता है।

पहले धर्मदास के साथ पार्वती का सामना हुआ। वह देवदास के घर का नौकर था। एक वर्ष की अवस्था से लेकर आज बारह वर्ष की उम्र तक वह उसके साथ है; पाठशाला पहुँचा आता है और छुट्टी के समय घर पर ले आता है। यह कार्य वह यथानियम प्रति दिन करता है तथा आज भी इसीलिए पाठशाला गया। पार्वती को देख-कर उसने कहा—पत्तो, तेरा देव दादा कहाँ हैं ?

"भाग गए।"

धर्मदास ने बड़े आश्चर्य से कहा—भाग गए ! क्यों ?

फिर पार्वती ने भोलानाथ की दुर्दशा की कथा को नए ढङ्ग से स्मरण कर हँसना आरम्भ किया—देख धर्म, देव दादा—हि-हि-हि—एक बार ही चूने के ढेर में हि—हि—हू—हू—एक बारगी धर्म, चित कर दिया।

धर्मदास ने सब बातें न समझ कर भी हँसी देख कर थोड़ा सा हँस दिया, फिर हँसी रोक कर कहा—कहती क्यों नहीं पत्तो, क्या हुआ ?

"देवदास ने भूलो को धक्का देकर चूने में गिरा—हि—हि—हि—!"

धर्मदास इस बार सब समझ गया और अत्यन्त चिन्तित होकर कहा—पत्तो, वह इस वक्त कहाँ है, तुम जानती हो ?

"मैं क्या जानूँ ?

"तू जानती है, कह दे। हाय ! उसे बड़ी भूख लगी होगी।"

"भूख लगी होगी, पर मैं कहूँगी नहीं।"

"क्यों नहीं कहेगी ?"

"कहने से मुझे बहुत मारेंगे। मैं खाना दे आऊँगी।"

धर्मदास ने कुछ असन्तुष्ट होकर कहा—तो दे आना और सञ्झा के पहले ही घर भुलावा देकर ले आना।

"ले आऊँगी।"

घर पर आकर पार्वती ने देखा कि उसकी माँ और देवदास की माँ ने सारी कथा सुन ली है। उससे भी सब बातें पूछी गईं। हँस कर, गम्भीर होकर उससे जो कुछ कहते बना, कहा। फिर आँचल में फरुही बाँध कर वह ज़मीन्दार के एक बग़ीचे में घुसी। बग़ीचा उन लोगों के मकान के पास था और इसी में एक ओर एक बँसवाड़ी थी। वह जानती थी कि छिप कर तमाखू पीने के लिए देवदास ने इसी बँसवाड़ी के बीच एक स्थान साफ़ कर रक्खा है। भाग कर छिपने के लिए यही उसका गुप्त स्थान था। भीतर जाकर पार्वती ने देखा कि बाँस की झाड़ी के बीच में देवदास

हाथ में एक छोटा सा हुक़्क़ा लेकर बैठा है और बड़ों की तरह धूम्रपान कर रहा है। मुख बड़ा गम्भीर था, उससे यथेष्ट दुर्भावना का चिन्ह प्रकट हो रहा था। वह पार्वती को आई देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ, किन्तु बाहर प्रकट नहीं किया। तमाखू पीते-पीते कहा—आओ।

पार्वती पास आकर बैठ गई। आँचल में जो बँधा हुआ था, उस पर देवदास की दृष्टि तत्क्षण पड़ी। कुछ भी न पूछ कर उसने पहले उसे खोल, कर खाना आरम्भ करते हुए कहा—पत्तो, पण्डित जी ने क्या किया?

"बड़े चाचा से कह दिया।"

देवदास ने हुँकारी भर कर, आँख तरेर कर कहा—बाबू जी से कह दिया?

"हाँ!"

"उसके बाद?"

"तुमको अब आगे से पाठशाला में नहीं जाने देंगे।"

"मैं भी पढ़ना नहीं चाहता।"

इसी समय उसका खाद्य-द्रव्य प्रायः समाप्त हो चला, देवदास ने पार्वती के मुख की ओर देख कर कहा—सँदेश दो।

"सँदेश तो नहीं लाई हूँ।"

"तब पानी लाओ।"

"पानी कहाँ पाऊँगी?"

देवदास ने विरक्त होकर कहा—कुछ नहीं है तो आई क्यों ? जाओ पानी ले आओ ।

उसका रूखा स्वर पार्वती को अच्छा नहीं लगा ; उसने कहा—मैं नहीं जा सकती, तुम जाकर पी आओ ।

"मैं क्या अभी जा सकता हूँ ?"

"तब क्या यहीं रहोगे ?"

"यहीं पर रहूँगा, फिर कहीं चला जाऊँगा ।"

पार्वती को यह सुन कर बड़ा दुःख हुआ । देवदास का यह आपत्य-वैराग्य देख कर और बातचीत सुन कर उसकी आँखों में जल भर आया; कहा—मैं भी चलूँगी !

"कहाँ ? मेरे साथ ? भला यह क्या हो सकता है ?"

पार्वती ने सिर हिला कर कहा—चलूँगी !

"नहीं, यह नहीं हो सकता । तुम पहले पानी लाओ ।"

पार्वती ने फिर सिर हिला कर कहा—चलूँगी !

"पहले पानी ले आओ ।"

"मैं नहीं जाऊँगी, तुम भाग जाओगे ।"

"नहीं, भागूँगा नहीं ।"

परन्तु पार्वती इस बात पर विश्वास नहीं कर सकी, इसी से बैठी रही । देवदास ने फिर हुक्म दिया—जाओ, कहता हूँ ।

"मैं नहीं जा सकती ।"

क्रोध से देवदास ने पार्वती का केश खींच कर धमकाया—जाओ, कहता हूँ।

पार्वती चुप रही। फिर उसने उसकी पीठ पर एक घूँसा मार कर कहा—नहीं जाओगी ?

पार्वती ने रोते-रोते कहा—मैं किसी तरह नहीं जा सकती।

देवदास एक ओर चला गया। पार्वती भी रोते-रोते सीधी देवदास के पिता के सम्मुख आकर खड़ी हो गई। मुखोपाध्याय जी पार्वती को बहुत प्यार करते थे; उन्होंने कहा—पत्तो, रोती क्यों है ?

"देवदास ने मारा है ?"

"वह कहाँ है ?"

"इसी बँसवाड़ी में बैठ कर तमाखू पी रहे हैं।"

एक तो पण्डित जी के आगमन से वह क्रोधित होकर बैठे थे, अब यह ख़बर पाकर वे एकदम आग-बबूला हो गए। कहा—देवा तमाखू भी पीता है ?

"हाँ पीते हैं, बहुत दिनों से पीते हैं। बँसवाड़ी के बीच में उनका हुक़्क़ा छिपा कर रक्खा हुआ है।"

"इतने दिन तक मुझसे क्यों नहीं कहा ?"

"देव दादा मारने को कहते थे।"

वास्तव में यह बात सत्य नहीं थी। कह देने से देवदास मार खाता, इसी से उसने यह बात नहीं कही थी।

आज वही बात केवल क्रोध के वशीभूत होकर उसने कह दी। इस समय उसकी वयस केवल आठ वर्ष की थी। क्रोध अभी अधिक था; किन्तु इसी से उसकी बुद्धि-विवेचना नितान्त अल्प नहीं थी। घर जाकर वह बिछौने पर लेट गई और बहुत देर तक रोने-धोने के बाद सो गई। उस रात को उसने खाना भी नहीं खाया।



दूसरा परिच्छेद

दूसरे दिन देवदास ने बड़ी मार खाई, दिन भर घर में बन्द रक्खा गया। फिर जब उसकी माता बहुत रोने-धोने लगी, तब देवदास को छोड़ दिया गया। दूसरे दिन भोर के समय वह भाग कर पार्वती के घर की खिड़की के नीचे आकर खड़े होकर उसे बुलाया—पत्तो, पत्तो!

पार्वती ने खिड़की खोल कर कहा—देव दादा!

देवदास ने इशारे से कहा—जल्दी आओ।

दोनों के एकत्र होने पर देवदास ने कहा—तुमने तमाखू पीने की बात क्यों कह दी?

"तुमने मारा क्यों?"

"तुम पानी लेने क्यों नहीं गई?"

पार्वती चुप रही। देवदास ने कहा—तुम बड़ी गदही हो, अब कभी मत कहना।

पार्वती ने सिर हिला कर कहा—नहीं कहूँगी।

"तब चलो, बाँस से बंसी काट लाएँ। आज बाँध में मछली पकड़नी होगी।"

बँसवाड़ी के निकट एक नोना का पेड़ था, देवदास उस पर चढ़ गया। बहुत कष्ट से बाँस की एक डाली नवा कर पार्वती को पकड़ने के लिए देकर कहा—देखो, इसे छोड़ना नहीं, नहीं तो मैं गिर पड़ूँगा।

पार्वती उसे प्राणपण से पकड़े रही। देवदास उसे पकड़ कर, नोना की एक डाल पर पाँव रख कर बंसी काटने लगा। पार्वती ने नीचे से कहा—देव दादा, पाठ-शाला नहीं जाओगे?

"नहीं।"

"बड़े चाचा तुम्हें भेजेंगे तब?"

"बाबू जी ने ख़ुद कहा है कि अब मैं वहाँ नहीं पढ़ूँगा। पण्डित जी मकान पर आवेंगे।"

पार्वती कुछ चिन्तित हो उठी। फिर कहा—कल से गरमी की वजह से पाठशाला सुबह की हो गई है, अब मैं जाऊँगी।"

देवदास ने ऊपर से आँख लाल करके कहा—नहीं, यह नहीं हो सकता।

इस समय पार्वती थोड़ा अन्यमनस्क हो गई, और नोना की डाल ऊपर उठ गई। साथ ही साथ देवदास

नोना की डाल से नीचे गिर पड़ा। डाल अधिक ऊँची नहीं थी, इससे ज़्यादा चोट नहीं आई, किन्तु शरीर में अनेक स्थान छिल गए। नीचे आकर क्रुद्ध देवदास ने एक सूखी कइन लेकर पार्वती की पीठ के ऊपर, गाल के ऊपर और जहाँ-तहाँ ज़ोर से मार कर कहा—जा, दूर हो जा।

पहले पार्वती स्वयं ही लज्जित हुई थी, पर जब छड़ी पर छड़ी क्रम से पड़ने लगीं, तो उसने क्रोध और अभिमान से दोनों आँखें अग्नि का भाँति लाल-लाल कर, रोते हुए कहा—मैं अभी बड़े चाचा के पास जाती हूँ।

देवदास ने क्रोधित होकर और एक बार मार कर कहा—जा, अभी जाकर कह दे, मेरा कुछ नहीं होगा।

पार्वती चली गई। जब वह दूर चली गई, तब देवदास ने पुकारा—"पत्तो!" पार्वती ने सुनी अनसुनी कर दी—और भी जल्दी-जल्दी चलने लगी। देवदास ने फिर बुलाया—"ओ पत्तो, ज़रा सुन जा!"

पार्वती ने जवाब नहीं दिया। देवदास ने विरक्त होकर थोड़ा चिल्ला कर आप ही आप कहा—जाकर मरने दो।

पार्वती चली गई। देवदास ने जैसे-तैसे करके दो-एक बंसी काट ली। उसका मन ख़राब हो गया था। रोते-रोते पार्वती मकान लौट आई। उसके गाल के ऊपर

छड़ी के नीले दाग़ की साँट उभड़ आई, थी पहले ही उस पर दादी की नज़र पड़ी। वे चिल्ला उठीं—बाप रे बाप! किसने ऐसा मारा है, पत्तो?

आँख मीचते-मीचते पार्वती ने कहा—पण्डित जी ने!

दादी ने उसे लेकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा—चल तो, एक बार नारायण के पास चलें। देखें, वह कैसा पण्डित है। हाय-हाय! बच्ची को एकदम मार डाला।

पार्वती ने पितामही के गले से लिपट कर कहा—चल!

मुखोपाध्याय जी के निकट आकर पितामही ने पण्डित जी के मृत पुरखा-पुरनियों को अनेकों प्रकार से भला-बुरा कह कर तथा उनकी चौदह पीढ़ियों को नरक में डाल कर, अन्त में स्वयं गोविन्द को बहुत तरह से गाली-गुफ़ते देकर कहा—नारायण, देखो तो उसकी हिम्मत को! शूद्र होकर ब्राह्मण की कन्या के शरीर पर हाथ उठाता है। कैसा मारा है, एक बार देखो! यह कह कर वृद्धा गाल के ऊपर पड़े हुए नीले दाग़ को अत्यन्त वेदना के साथ दिखाने लगी।

नारायण बाबू ने तब पार्वती से पूछा—किसने मारा है पत्तो?

पार्वती चुप रही। तब दादी ने और एक बार चिल्ला कर कहा—और कौन मारेगा सिवा उस गँवार पण्डित के।

"क्यों मारा है?"

पार्वती ने इस बार भी कुछ नहीं कहा। मुखोपाध्याय महाशय ने समझा कि किसी क़ुसूर पर मारा है, लेकिन इस तरह मारना उचित नहीं। प्रकट में भी यही कहा। पार्वती ने पीठ खोल कर कहा—यहाँ भी मारा है।

पीठ के दाग़ और भी स्पष्ट तथा गहरे थे। इस पर वे दोनों ही बड़े क्रोधित हुए। "पण्डित जी को बुला कर कैफ़ियत तलब की जायगी!" मुखोपाध्याय जी ने यही अपनी राय ज़ाहिर की। इस प्रकार स्थिर हुआ कि ऐसे पण्डित के निकट लड़के-लड़कियों को भेजना उचित नहीं।

यह निश्चय सुन कर पार्वती प्रसन्नतापूर्वक दादी की गोद में चढ़ कर घर लौट आई। घर पहुँचने पर पार्वती माता की जिरह में पड़ी। उन्होंने बैठ कर पूछा—क्यों मारा है?

पार्वती ने कहा—झूठ ही मूठ मारा है।

माता ने कन्या का कान ख़ूब ज़ोर से मल कर कहा—झूठ-मूठ कोई मार सकता है?

उसी समय दालान से सास जा रही थीं, उन्होंने घर की चौखट के पास आकर कहा—बहू, माँ होकर भी तुम झूठ-मूठ मार सकती हो और वह निगोड़ा नहीं मार सकता?

बहू ने कहा—झूठ-मूठ कभी नहीं मारा है। बड़ी भली लड़की है, जो कुछ नहीं किया और उन्होंने मारा

सास ने विरक्त होकर कहा—अच्छा यही सही, पर इसे मैं पाठशाला नहीं जाने दूँगी।

"लिखना-पढ़ना नहीं सीखेगी ?"

"क्या होगा सीख कर बहू ? एक-आध चिट्ठी-पत्री लिख लेना, रामायण-महाभारत पढ़ लेना ही काफ़ी है। फिर तुम्हारी पत्तो को न जजी करनी है और न वकील होना है।"

अन्त में बहू चुप हो गई। उस दिन देवदास ने बहुत डरते-डरते घर में प्रवेश किया। पार्वती ने आदि से लेकर अन्त तक सारी घटना अवश्य ही कह दी होगी, इसमें उसे कोई सन्देह नहीं था। परन्तु घर आने पर उसका लेश-मात्र भी आभास न मिला, वरन् माँ से सुना कि आज गोविन्द पण्डित जी ने पार्वती को ख़ूब मारा है, इसी से अब वह भी पाठशाला नहीं जायगी। इस आनन्द की अधिकता से वह भली-भाँति भोजन भी नहीं कर सका; किसी तरह झटपट खा-पीकर दौड़ा हुआ पार्वती के पास आया और हाँफते-हाँफते कहा—तुम अब पाठशाला नहीं जाओगी ?

"नहीं।"

"कैसे ?"

"मैंने कहा कि पण्डित जी मारते हैं।"

देवदास एक बार ख़ूब हँसा, उसकी पीठ ठोक कर

कहा कि उसके समान बुद्धिमती इस पृथ्वी पर दूसरी नहीं है। फिर उसने धीरे-धीरे पार्वती के गाल पर पड़े हुए नीले दाग़ की सयत्न परीक्षा कर, निश्वास फेंक कर कहा—अहा!

पार्वती ने थोड़ा हँस कर उसके मुख की ओर देख कर कहा—क्या?

"बड़ी चोट लगी न पत्तो?"

पार्वती ने सिर हिला कर कहा—हूँ!

"तुम क्यों ऐसा करती हो, इसी से तो क्रोध होता है और इसीलिए मारता भी हूँ।"

पार्वती की आँखों में जल भर आया, मन में आया कि पूछे कि क्या करें। परन्तु पूछ नहीं सकी।

देवदास ने उसके माथे पर हाथ रख कर कहा—अब ऐसा नहीं करना—अच्छा!

पार्वती ने सिर हिला कर कहा—नहीं करूँगी।

देवदास ने और एक बार पीठ ठोक कर कहा—अच्छा, अब मैं कभी तुमको नहीं मारूँगा।

तीसरा परिच्छेद

दिन पर दिन बीतता जाता था—इन दोनों बालक-बालिकाओं के आनन्द की सीमा नहीं थी। सारे दिन वे इधर-उधर घूमा करते थे, सन्ध्या के समय लौटने पर डाँट-डपट के अतिरिक्त मार-पीट भी ख़ूब पड़ती थी। फिर सुबह होते ही घर से निकल भागते थे और रात को आने पर मार-पीट और घुड़की सहते थे। रात में सुख की नींद सोते; फिर सवेरा होते ही भाग कर खेल-कूद में जा लगते। इनका दूसरा कोई सङ्गी-साथी न था, ज़रूरत भी नहीं थी। गाँव में उपद्रव और अत्याचार करने के लिए यही दोनों काफ़ी थे। उस दिन सूर्योदय होने के बाद ही दोनों ताल में उतरे। दोपहर के समय तक आँखें लाल किए सारे तालाब को मथ कर पन्द्रह मछलियाँ पकड़ीं और योग्यतानुसार आपस में हिस्सा लगा कर घर लौटे। पार्वती

की माता ने कन्या को मार-पीट कर घर में बन्द कर दिया। देवदास के विषय में मैं ठीक नहीं जानता; क्योंकि वह इन सब बातों को किसी प्रकार प्रकट नहीं करता। जब पार्वती रो रही थी, उस समय दो या ढाई बजे थे। देवदास ने आकर एक बार खिड़की के नीचे से बहुत मीठे स्वर से बुलाया—"पत्तो, ओ पत्तो!" पार्वती ने सम्भवतः सुना, किन्तु क्रोध-वश उत्तर नहीं दिया। तब उसने एक निकटवर्ती चम्पा के पेड़ पर बैठ कर सारा दिन बिता दिया। सन्ध्या के समय धर्मदास समझा-बुझा कर बड़े परिश्रम से उसे उतार कर घर पर लाया।

यह केवल उसी दिन हुआ। दूसरे दिन पार्वती भोर से ही देव दादा के लिए बेचैन हो रही थी, लेकिन देवदास नहीं आया, वह पिता के साथ पास के गाँव में निमन्त्रण में गया हुआ था। देवदास जब नहीं आया तो पार्वती उदासीन मन से घर से बाहर निकली। कल ताल में उतरने के समय देवदास ने पार्वती को तीन रुपए रखने के लिए दिए थे कि कहीं खो न जायँ। उन तीनों रुपयों को उसने आँचल के छोर में बाँध लिए थे। उसने आँचल को हिरा-फिरा कर और स्वयं इधर-उधर घूम कर कई क्षण बिताए। कोई सङ्गी-साथी नहीं मिला, क्योंकि उस समय प्रातःकाल की पाठशाला थी। पार्वती तब दूसरे गाँव में गई। वहाँ मनोरमा का मकान था। मनोरमा

पाठशाला में पढ़ती है, उसकी उम्र कुछ बड़ी थी। परन्तु वह पार्वती की सखी थी। बहुत दिनों से आपस में भेंट नहीं हुई थी। आज पार्वती ने अवकाश पा उसके घर पर जाकर पुकारा—मनो घर में हैं?

"पत्तो?"

"हाँ—मनो कहाँ हैं बुआ?"

"वह पाठशाला गई हैं—तुम नहीं जातीं?"

"मैं पाठशाला नहीं जाती, देव दादा भी नहीं जाते।"

मनोरमा की बुआ ने हँस कर कहा—तब तो अच्छा है, तुम भी पाठशाला नहीं जातीं और देव दादा भी नहीं।

"नहीं, हम लोग कोई नहीं जाते।"

"अच्छी बात है, पर मनो पाठशाला गई है।"

बुआ ने बैठने को कहा, पर वह बैठी नहीं, लौट आई। रास्ते में रसिकपाल की दूकान के पास तीन वैष्णवी तिलक-मुद्रा लगाए, हाथ में खँजड़ी लिए भिक्षा माँग रही थीं। पार्वती ने उन्हें बुला कर कहा—ओ वैष्णवी, तुम लोग गाना जानती हो?

एक ने फिर कर देखा और कहा—जानती हूँ, क्या है बेटी?

"तब गाओ!" तीनों खड़ी हो गईं। एक ने कहा—ऐसे कैसे गाना होगा, भिक्षा देनी होगी। चलो, तुम्हारे घर पर चल कर गाएँगी।

"नहीं, यहीं गाओ।"

"पैसा देना होगा!"

पार्वती ने अपना आँचल दिखा कर कहा—पैसा नहीं, रुपया है।

आँचल में बँधा रुपया देख कर वे लोग दूकान से कुछ दूर पर जाकर बैठीं। फिर खँजड़ी बजा कर, गले से गला मिला कर तीनों ने गाना गाया। क्या गाया, उसका क्या अर्थ था, यह सब पार्वती ने कुछ भी नहीं समझा। इच्छा करने पर भी वह नहीं समझ सकती थी। लेकिन उसी क्षण उसका मन देव दादा के पास खिंच गया।

गाना समाप्त करके एक वैष्णवी ने कहा—क्या भिक्षा अब दोगी बेटी?

पार्वती ने आँचल की गाँठ खोल कर उन लोगों को तीन रुपए दे दिए। तीनों अवाक् होकर उसके मुख की ओर कुछ क्षण देखती रहीं।

एक ने कहा—किसका रुपया है बेटी?

"देव दादा का।"

"वे तुम्हें मारेंगे नहीं?"

पार्वती ने थोड़ा सोच कर कहा—नहीं।

एक ने कहा—जीतो रहो।

पार्वती ने हँस कर कहा—तुम तीनों जने का ठीक-ठीक हिस्सा लग गया न?

तीनों ने सिर हिला कर कहा—"हाँ मिल गया। राधा-रानी तुम्हारा भला करें।" यह कह कर उन लोगों ने आन्तरिक कामना की कि इस दानशाला छोटी कन्या को कोई दण्ड भोग न करना पड़े। पार्वती उस दिन जल्दी ही मकान लौटी। दूसरे दिन प्रातःकाल देवदास से उसको भेंट हुई। उसके हाथ में एक परेता था, पर गुड्डी नहीं थी, वह ख़रीदनी होगी। पार्वती से कहा—"पत्तो, रुपया दो!"

पार्वती ने सिर झुका कर कहा—रुपया नहीं है।

"क्या हुआ?"

"वैष्णवी को दे दिया, उन लोगों ने गाना गाया था।"

"सब दे दिया?"

"हाँ! सब तीन ही रुपए तो थे।"

"दुर पगली, क्या सब दे देना था।"

"वाह! वे लोग जो तीन जनी थीं, तीन रुपए न देती तो तीनों का कैसे ठीक हिस्सा लगता?

देवदास ने गम्भीर होकर कहा—"मैं होता तो दो रुपए से ज़्यादा न देता।" यह कह कर उसने परेता की मुठिया से मिट्टी के ऊपर चिन्हाटी खींचते-खींचते कहा—"ऐसा होने से उनमें प्रत्येक को दस आना तेरह गण्डा एक कौड़ी का हिस्सा पड़ता।"

पार्वती ने सोच कर कहा—वे लोग क्या तुम्हारी तरह हिसाब जानती हैं?

देवदास ने इबारती तक सवाल सीखे हैं पार्वती की इस बात से प्रसन्न होकर कहा—यह ठीक है।

पार्वती ने देवदास का हाथ पकड़ कर कहा—मैंने सोचा था कि तुम मुझे मारोगे देव दादा!

देवदास ने विस्मित होकर कहा—मारूँगा क्यों?

"वैष्णवी लोगों ने कहा था कि तुम मारोगे।"

यह बात सुन कर देवदास ने ख़ूब प्रसन्न हो पार्वती के कन्धे पर भार देकर कहा—दुर! कभी अपराध करने से क्या मैं मारता हूँ?

देवदास ने सम्भवतः मन में सोचा था कि पार्वती का यह काम उसके पीनल-कोड के अन्तर्गत नहीं है, क्योंकि तीन रुपए तीन आदमियों के बीच ठीक-ठीक तक़सीम कर दिए। विशेषतः जिन वैष्णवी लोगों ने पाठशाला में इबारती सवाल नहीं पढ़ा है, उन्हें तीन रुपए के बदले दो रुपए देना उनके प्रति भारी अत्याचार करना था। फिर वह पार्वती का हाथ पकड़ कर छोटे बाज़ार की ओर गुड्डी ख़रीदने के लिए चला गया। परेता को वहीं एक झाड़ी में छिपा दिया।

चौथा परिच्छेद



इसी तरह एक वर्ष कट गया, किन्तु अब और नहीं कटना चाहता। देवदास की माता ने शोर-गुल मचाया। स्वामी को बुला कर कहा कि देवा तो एकदम मूर्ख हरवाहा हो गया, इसका कोई बहुत जल्द उपाय करो।

उन्होंने सोच कर कहा—देवा को कलकत्ते जाने दो। नगेन्द्र के घर पर रह कर वह ख़ूब अच्छी तरह लिख-पढ़ सकेगा।

नगेन्द्र बाबू सम्बन्ध में देवदास के मामा हैं। यह बात सबने सुनी। पार्वती यह सुन कर बहुत चिन्तित हुई। देवदास को अकेले में पाकर उसका हाथ पकड़ कर हिलाते-हिलाते पूछा—देव दादा, क्या अब तुम कलकत्ता जाओगे?

"किसने कहा?"

"बड़े चाचा कहते थे।"

"नहीं, मैं किसी तरह नहीं जाऊँगा।"

"और अगर ज़बरदस्ती भेजेंगे ?"

"ज़बरदस्ती !"

इस समय देवदास ने अपने मुख का ऐसा भाव बनाया, जिससे पार्वती अच्छी तरह समझ गई कि उससे इस पृथ्वी भर में कोई ज़बरदस्ती से काम नहीं करा सकता। यही तो वह चाहती भी थी। अस्तु, बड़े आनन्द के साथ एक बार और उसका हाथ पकड़ कर इधर-उधर हिलाया और उसके मुँह की ओर देख कर कहा—देखो कभी मत जाना, देव दादा !

"कभी नहीं।"

किन्तु उसकी यह प्रतिज्ञा नहीं रही। उसके माता-पिता ने उसे डाँट-डपट कर और मार-पीट कर धर्मदास के साथ कलकत्ते भेज दिया। जाने के दिन देवदास के हृदय में बड़ा दुःख हुआ। नए स्थान में जाने के लिए उसे कुछ भी कौतूहल और आनन्द नहीं हुआ। पार्वती उस दिन उसे किसी तरह छोड़ना नहीं चाहती थी। कितना ही रोई, परन्तु इसे कौन सुनता है। पहले अभिमान में कुछ देर तक देवदास से बातचीत नहीं की; लेकिन अन्त में जब देवदास ने बुला कर उससे कहा—पत्तो, मैं जल्दी ही आऊँगा; अगर न आने देंगे तो भाग आऊँगा। तब पार्वती ने सँभल कर अपने हृदय की अनेक आन्तरिक बातें देवदास को कह सुनाईं। इसके बाद घोड़ा-गाड़ी पर

चढ़ कर, पोर्टमॉण्टो लेकर, माता का आशीर्वाद और आँखों का जल-बिन्दु कपाल पर टीके की भाँति लगा कर वह चला गया। उस समय पार्वती को बहुत कष्ट हुआ; आँखों से कितनी ही जल की धाराएँ गालों पर बह कर नीचे गिरीं; उसका हृदय अभिमान से फटने लगा। पहले कितने ही दिन उसके ऐसे ही कटे। इसके बाद एक दिन प्रातःकाल उठ कर उसने सोचा कि सारे दिन उसके पास कोई काम करने को नहीं है, इसके पहले पाठशाला छोड़ने के बाद प्रातःकाल से सन्ध्या तक झूठ-मूठ ही खेल-कूद में कट जाता था; कितने ही काम उसे करने को रहते थे, किन्तु समय नहीं मिलता था। पर अब सारे दिन योंही पड़ी रहती है, एक काम भी खोजने पर नहीं मिलता। प्रातःकाल उठ कर किसी दिन चिट्ठी लिखने बैठी—दस बज गए। माता झुँझला उठी, पितामही ने सुन कर कहा—उसे लिखने दो। सुबह इधर-उधर न दौड़ कर लिखते-पढ़ते रहना अच्छा है।

जिस दिन देवदास का पत्र आता है, वह पार्वती के लिए बड़े सुख का दिन होता है। सीढ़ी की देहली के ऊपर बैठ कर वही काग़ज़ हाथ में लेकर सारे दिन पढ़ती रहती है। इसी भाँति दो महीने बीत गए। पत्र लिखना अथवा पाना अब उतना जल्दी-जल्दी नहीं होता, उत्साह भी कुछ कम हो गया।

एक दिन प्रातःकाल पार्वती ने माता से कहा—माँ, मैं फिर पाठशाला जाऊँगी।

"क्यों?"

पार्वती पहले कुछ विस्मित हुई, फिर शिर हिला कर बोली—मैं ज़रूर जाऊँगी।

"तो जा, पाठशाला जाने से मैंने कभी तुझे रोका तो नहीं है।"

उसी दिन दोपहर में पार्वती ने दासी का हाथ पकड़ कर, बहुत दिन से छोड़ी हुई स्लेट और पेन्सिल को ढूँढ़ कर बाहर निकाला और उसी पुराने स्थान पर शान्त एवम् गम्भीर भाव से जा बैठी।

दासी ने कहा—गुरु जी पत्तो को अब मारना नहीं, यह अपनी इच्छा से पढ़ने आई है, जब तक इसकी इच्छा होगी, पढ़ेगी और जब इच्छा न होगी, घर चली जायगी।

गुरु जी ने मन ही मन कहा, तथास्तु! प्रकट में कहा—वही होगा।

एक बार ऐसी इच्छा हुई कि पूछें कि पार्वती कलकत्ता क्यों नहीं भेजी गई। किन्तु यह बात नहीं पूछी। पार्वती ने देखा कि उसी स्थान पर और उसी बेञ्च पर छात्र-सरदार भूलो बैठा है। उसे देख कर पहले एक बार हंसी आई, लेकिन दूसरे ही क्षण आँखों में आँसू डबडबा आए। फिर उसे भूलो के ऊपर बड़ा क्रोध

आया। मन में सोचा कि केवल उसी ने देवदास को घर से बाहर किया। इस तरह से बहुत दिन बीत गए।

बहुत दिन के बाद देवदास मकान पर लौटा। जल्दी से पार्वती के पास आया, नाना प्रकार की बातचीत हुई। उसे अधिक बातचीत नहीं करनी थी—थी भी तो वह कर नहीं सकी। परन्तु देवदास ने बहुत सी बातें कहीं। प्रायः सभी कलकत्ते की बातें थीं। गरमी की छुट्टी बीत गई, देवदास फिर कलकत्ता गया। इस बार भी रोना-धोना हुआ, परन्तु पिछली बार सी उसमें वह गम्भीरता नहीं थी। इस तरह चार वर्ष बीत गए। इन कई वर्षों में देवदास के स्वभाव में इतना परिवर्तन हुआ, जिसे देख कर पार्वती ने कई बार छिपे-छिपे आँसू गिराए। इसके पहले देवदास में जो ग्रामीण दोष थे, वे शहर में रहने से एक बारगी दूर हो गए। अब उसे डासन शू (जूता) अच्छा सा कोट, पैंट, टाई, छड़ी, सोने की चेन और घड़ी, गोल्डन फ्रेम का चशमा आदि के न होने से बड़ी लज्जा लगती है। गाँव की नदी के तीर पर घूमना अब उसे अच्छा नहीं लगता, और बदले में हाथ में बन्दूक़ लेकर शिकार खेलने में विशेष आनन्द मिलता है। छोटी मछली के पकड़ने के बजाय बड़ी मछलियों के फँसाने की इच्छा है। यही क्यों—सामाजिक बात, राजनीतिक चर्चा, सभा-समिति, क्रिकेट-फुटबॉल आदि की आलोचनाएँ

होती हैं। हाय रे ! कहाँ वह पार्वती, कहाँ वह उन लोगों का ताल—सोनापुर गाँव ! बाल्य-काल की दो-एक सुख की बातों का भी स्मरण न आता हो—ऐसा नहीं; किन्तु अनेक प्रकार के कार्य-भार के कारण वे बातें बहुत देर तक हृदय में जगह नहीं पातीं। फिर गरमी की छुट्टी हुई। पिछले वर्ष की गरमी की छुट्टी में देवदास विदेश घूमने चला गया था, घर नहीं गया था। इस बार माता-पिता के बहुत आग्रह करने पर और अनेकों पत्र लिखने पर अपनी इच्छा न रहते हुए भी देवदास बिस्तर बाँध कर, सोनापुर ग्राम के लिए हवड़ा स्टेशन पर आया। जिस दिन वह घर आया, उस दिन उसका शरीर कुछ अस्वस्थ था इसीसे बाहर नहीं निकला। दूसरे दिन पार्वती के घर पर आकर बुलाया—चाची !

पार्वती की माता ने आदर के साथ कहा—आओ बेटा, यहाँ आकर बैठो।

चाची के साथ कुछ क्षण बातचीत करने पर पूछा—पत्तो कहाँ है, चाची ?

"वही ऊपर वाली कोठरी में है।"

देवदास ने ऊपर जाकर देखा कि पार्वती सँझबाती दे रही है। बुलाया—पत्तो !

पहले पार्वती चमत्कृत हो उठी, फिर प्रणाम करके बग़ल में हट कर खड़ी हो गई।

"क्या होता है, पत्तो ?"

इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं थी, इसीसे पार्वती चुप रही। फिर देवदास ने लजा कर कहा—जाता हूँ, सन्ध्या हो गई, शरीर अच्छा नहीं है।

देवदास चला गया।



पाँचवाँ परिच्छेद

पार्वती ने इस साल तेरहवें वर्ष में पाँव रक्खा है—दादी यह कहती है। इसी उम्र में शारीरिक सौन्दर्य अकस्मात् मानो कहीं से आकर किशोरी के सर्वाङ्ग को छा लेता है। आत्मीय स्वजन सहसा एक दिन चमत्कृत होकर देखते हैं कि उनकी छोटी कन्या अब बड़ी हो गई। उसके विवाह की तब छटपटी पड़ती है। चक्रवर्ती महाशय के घर में आज कई दिनों से इन्हीं सब बातों को चर्चा हो रही है। माता इसके लिए बड़ी चिन्तित हो रही थी, बात-बात में वह पति को सुना कर कहती कि अब पत्तो को अधिक दिन तक अविवाहित रखना उचित नहीं है। वे लोग बड़े आदमी नहीं हैं; उन लोगों को एकमात्र यही भरोसा है कि कन्या अनुपम

सुन्दरी है। संसार में यदि रूप की प्रतिष्ठा है तो पार्वती के लिए अधिक चिन्ता न करनी पड़ेगी। और भी एक बात है, जिसे यहीं पर कह देना उचित है। चक्रवर्ती-परिवार को कन्या के विवाह के लिए आज तक कोई विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ी है ; हाँ, पुत्र के विवाह के लिए अवश्य करनी पड़ती है। कन्या के विवाह में दहेज ग्रहण करते थे, पुत्र के विवाह में दहेज देकर कन्या घर ले आते थे। किन्तु नीलकण्ठ स्वयं इस प्रथा को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनकी यह तनिक भी इच्छा नहीं थी कि कन्या को बेच कर धनोपार्जन करें। पार्वती की माँ इस बात को जानती थी ; इसीसे कन्या के विवाह के लिए पति को समय-समय पर चेताया करती थी। आरम्भ से ही पार्वती की माता के हृदय में यह अभिलाषा लग रही थी कि किसी तरह देवदास के साथ मेरी कन्या का विवाह हो। उसे यह स्वप्न में भी विश्वास नहीं होता था कि मेरी यह आशा दुराशा-मात्र है। वह सोचती थी कि देवदास से अनुरोध करने पर कोई रास्ता निकल आएगा। सम्भवतः यही सोच कर नील-कण्ठ की माता ने देवदास की माँ से इस प्रकार यह चर्चा छेड़ी—अहा ! बहू, देवदास और मेरी पत्तो में जैसा स्नेह है, वह ढूँढ़े से भी कहीं नहीं मिल सकता।

देवदास की माँ ने कहा—भला ऐसा क्यों न होगा

चाची, वे दोनों भाई-बहिन की तरह पल कर इतने बड़े हुए हैं।

"हाँ बहू, यही मैं भी समझती हूँ। देखो न, जब देवदास कलकत्ते गया था तो पत्तो सिर्फ़ आठ बरस की थी, पर उसी अवस्था में वह उसकी चिन्ता करते-करते सूख कर काँटा हो गई। देवदास की यदि कभी एक भी चिट्ठी आती थी, तो वह उसे बड़े चाव से दिन-रात बारम्बार पढ़ा करती थी। यह हम लोग अच्छी तरह जानती हैं।"

देवदास की माँ ने मन ही मन सब कुछ समझ लिया। थोड़ी मुस्कराई। उस मुस्कराहट में कितने छिपे हुए भाव गुथे थे, यह मैं नहीं कह सकता, किन्तु वेदना बहुत थी। वे भी सभी बातें जानती थीं, साथ हो पार्वती को प्यार भी करती थीं। किन्तु वह कन्याओं के बेचने और ख़रीदने-वाले घर की लड़की थी, फिर घर के पास ही कुटुम्ब था। अतएव ऐसे के साथ विवाह-सम्बन्ध होना ठीक नहीं था। उसने कहा—चाची, वे (पति) इतनी छोटी उम्र में लड़के का ब्याह नहीं करेंगे; ख़ासकर पढ़ने-लिखने के दिनों में। इसीसे वे मुझसे कहते थे कि बड़े लड़के द्विज-दास का बचपन में ब्याह कर देने से बड़ी हानि हुई। लिखना-पढ़ना एकबारगी छूट गया।

पार्वती की दादी का मुख यह सुन कर, बिलकुल उतर गया। लेकिन फिर भी कहा—यह तो मैं भी जानती

हूँ बहू, लेकिन क्या तुम यह नहीं जानतीं कि पत्तो अब बड़ी हुई। उसके देह की गठन भी लम्बी है, इसीसे यदि नारायण इस बात को......

देवदास की माँ ने बात काट कर कहा—नहीं चाची, मैं यह बात उनसे नहीं कह सकूँगी। तुम्हीं कहो, मैं किस मुँह से इस वक़्त उनसे यह बात कहूँ?

यह बात यहीं समाप्त हो गई। परन्तु स्त्रियों के पेट में भला कभी बात पचती है? जब स्वामी भोजन करने के लिए बैठे, तो देवदास की माँ ने कहा—पार्वती की दादी आज उसके ब्याह की बातचीत करती थी।

स्वामी ने मुख ऊपर उठा कर कहा—हाँ, अब पार्वती भी इस योग्य हो गई है, अब उसका विवाह कर देना ही उचित है।

"यही तो आज वह कह रही थी कि अगर देवदास के साथ उसका...!"

स्वामी ने भौं चढ़ा कर कहा—तो तुमने क्या कहा?

"मैं क्या कहती? दोनों में बड़ा स्नेह है; पर इसी से क्या कन्या के बेचने-ख़रीदने वाले चक्रवर्ती घराने की लड़की लाऊँगी? फिर घर के पास ही घर ठहरा, छिः! छिः!!"

स्वामी ने सन्तुष्ट होकर कहा—ठीक है, क्या घराने का नाम हँसाऊँगा? इन सब बातों पर कान नहीं देना।

गृहिणी ने एक सूखी हँसी हँस कर कहा—नहीं, मैं इन सब बातों पर कान नहीं देती। पर तुम भी यह मत भूल जाना।

स्वामी ने गम्भीर मुख से भात का कौर उठाते हुए कहा—ऐसा होता तो यह इतनी बड़ी ज़मींदारी कभी की फुँक गई होती।

जब वैवाहिक प्रस्ताव के अस्वीकृति की बात नीलकण्ठ के कानों में पहुँची, तो उन्होंने माँ को बुला कर बड़े तिरस्कार के साथ कहा—माँ, तुम क्यों ऐसी बात कहने गई ?

माँ चुप रही। नीलकण्ठ ने फिर कहा—कन्या के ब्याह के लिए हम लोग किसी के पाँव नहीं पड़ते, बल्कि कितने ही लोग हम लोगों के पाँव पड़ते हैं। मेरी लड़की कुरूपा नहीं है। देखो, तुम लोगों से कहे देता हूँ कि एक हफ़्ते के भीतर ही सम्बन्ध ठीक कर लूँगा। ब्याह के लिए क्या सोच करना।

किन्तु जिसके लिए पिता ने इतनी बड़ी बात कही थी, उसके सिर पर बिजली सी गिरी। लड़कपन ही से उसकी यही धारणा थी कि देवदास पर एकमात्र उसी का अधिकार है। अधिकार किसी ने उसके हाथ में सौंपा हो, यह बात नहीं थी। पहले वह स्वयं भी इसे अच्छी तरह समझ नहीं सकी, अनजान में ही उसके अधीर मन

ने दिनोंदिन इस अधिकार को अति नीरवता एवं दृढ़ता के साथ अपनाकर प्रतिष्ठित किया था। अब तक यद्यपि उसका बाहरी रूप आँखों से वह नहीं देख सकी, तथापि आज उसको बेहाथ होते देख कर उसके सारे हृदय में एक भारी तूफ़ान सा उठने लगा।

किन्तु देवदास के सम्बन्ध में यह बात कहना ठीक नहीं। लड़कपन में पार्वती के ऊपर जो दख़ल पाया था, उसका उसने पूर्ण-रूप से उपभोग किया। परन्तु कलकत्ता जाकर काम-काज की भीड़ और अन्यान्य आमोद-प्रमोद में फँस कर वह पार्वती को बहुत-कुछ भूल गया। लेकिन वह यह नहीं जानता कि पार्वती अपने उसी अपरिवर्तित ग्राम्य-जीवन में निश-दिन केवल उसी का ध्यान किया करती है। केवल इतना ही नहीं, उसने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि बाल्य-काल से जिसे हर तरह से अपना जाना, एवम् सब दुःख-सुख में जिसका बराबर साथ दिया, यौवन की पहली सीढ़ी पर पाँव रखते ही उसे इस तरह फिसलना पड़ेगा। किन्तु उस समय विवाह की बात कौन सोचता था? कौन जानता था कि किशोर-बन्धन, विवाह-बन्धन के बिना किसी तरह चिरस्थायी नहीं रह सकता। 'इसीलिए विवाह नहीं हो सकता' यह सम्बाद उसकी सारी आशा-पिपासा को छिन्न-भिन्न करने के लिए उसके हृदय से खींचातानी करने लगा। देवदास का

प्रातःकाल का समय पढ़ने-लिखने में बीतता है। दोपहर में बड़ी गरमी पड़ती है, घर से बाहर निकलना कठिन है, केवल सायङ्काल में यदि इच्छा होती तो वह बाहर हवा खाने के लिए जाया करता है। इस समय किसी दिन वह धोती-कुरता और एक अच्छा सा जूता पहन कर, हाथ में छड़ी लेकर टहलने के लिए निकलता। जाते समय वह चक्रवर्ती के मकान के नीचे से होकर जाता था। पार्वती ऊपर बँगले से आँसू पोंछती हुई उसे देखती थी। कितनी ही बातें उसके मन में उठती थीं। मन में उठता था कि दोनों बड़े हुए। बहुत दिन परदेश में रहने के कारण दोनों एक-दूसरे से बड़ी लज्जा करते हैं। देवदास उस दिन इसी तरह चला गया, लज्जा के कारण इच्छा रहते हुए भी वह कोई बात नहीं कर सका। यह बात पार्वती भी समझने से नहीं चूकी।

देवदास भी प्रायः इसी भाँति सोचता था। बीच-बीच में उसके साथ बातचीत करने और उसे देखने के लिए इच्छा भी होती थी, किन्तु साथ ही यह भी ख़्याल होता था कि क्या यह अच्छा दीखेगा ?

यहाँ कलकत्ते का वह कोलाहल नहीं है, वह आमोद-प्रमोद, थिएटर और गाना-बजाना नहीं है। इसीलिए उसे केवल उसके बचपन की बातें याद आती हैं। मन में प्रश्न उठता था कि क्या यह पार्वती वही पार्वती है । पार्वती

मन में सोचती कि क्या यह देवदास बाबू वही देखें तो हैं। देवदास अब प्रायः चक्रवर्ती के मकान की ओर नहीं जाता। किसी दिन वह आँगन में खड़ा होकर बुलाता—छोटी चाची, क्या करती हो ?

छोटी चाची कहतीं—यहाँ आकर बैठो।

देवदास कहता—नहीं रहने दो चाची, मैं थोड़ा घूमने जा रहा हूँ।

पार्वती किसी दिन ऊपर रहती और किसी दिन देवदास के सामने पड़ जाती थी। वह जब छोटी चाची के साथ बातचीत करने लगता, तो पार्वती धीरे से खिसक जाती थी। सायङ्काल के बाद देवदास के घर में दीया जलता था। ग्रीष्म काल की खुली हुई खिड़की से पार्वती बहुत देर तक उसी ओर देखा करती थी, किन्तु सिवा उस दीप-प्रकाश के और कुछ नहीं देख पाती थी। पार्वती सदा से आत्माभिमानिनी है, वह जो यन्त्रणा सहन कर रही है, उसके तिल-मात्र की भी किसी को थाह न देने की उसकी आन्तरिक चेष्टा रहती है। और फिर किसी से कहने-सुनने में लाभ ही क्या ? सहानुभूति सहन नहीं हो सकती; और तिरस्कार लाञ्छना ! इससे तो मर जाना ही अच्छा है। पिछले वर्ष मनोरमा का विवाह हुआ, किन्तु वह ससुराल नहीं गई। इसी से बीच-बीच में वह पार्वती से मिलने आ जाया करती थी। पहले दोनों सखियों में

प्रात...भी बातें घुल-घुल कर होती थीं, पर अब वह बात नहीं है। पार्वती उसका साथ नहीं देती। वह या तो ऐसी बातों के छिड़ने पर चुप हो रहती है या टाल-मटोल कर जाती है।

पार्वती के पिता कल रात को घर लौटे। इधर कई दिनों से वह वर ढूँढ़ने गए थे। अब विवाह की सब बातचीत पक्की करके घर लौटे हैं। प्रायः बीस-पच्चीस कोस की दूरी पर, बर्दवान ज़िला के हाथीपोता गाँव के ज़मीन्दार के साथ विवाह का होना स्थिर कर आए हैं। उनकी आर्थिक दशा अच्छी है, उम्र चालीस वर्ष से कुछ कम है। गत वर्ष पहली स्त्री का स्वर्गवास हुआ है, इसीलिए दूसरा विवाह कर रहे हैं। इस समाचार से कुटुम्बियों में किसी को आनन्द नहीं हुआ, वरन् दुःख ही पहुँचा। फिर भी भुवन चौधरी से सब मिला कर दो-तीन हज़ार रुपए की प्राप्ति थी, इसी से सब स्त्रियाँ चुप हो रहीं।

एक दिन दोपहर के समय जब देवदास चौके में भोजन करने को बैठा, तो माँ ने पास बैठ कर कहा—पत्तो का ब्याह है।

देवदास ने मुँह उठा कर पूछा—कब ?

इसी महीने में। कल वर ख़ुद आकर कन्या को देख गया है।

देवदास ने कुछ विस्मित होकर कहा—क्या, मैं तो कुछ नहीं जानता माँ!

"तुम कैसे जानोगे? वर दुहेजू है—अवस्था कुछ अधिक है, पर घर का धनी है। पत्तो खाने-पीने से सुखी रहेगी।"

देवदास गर्दन नीची कर भोजन करने लगा। उसकी माँ ने फिर कहना आरम्भ किया—उन लोगों की इच्छा थी कि इसी घर में ब्याह हो।

देवदास ने मुँह उठा कर कहा—"फिर?" माँ ने कहा—"छिः! ऐसा कभी हो सकता है। एक तो वे लोग कन्या बेचने-ख़रीदने वाले, दूसरे घर के पड़ोस में; फिर ऐसे छोटे घराने में! छिः-छिः!" यह कह कर माँ ने ओठ सिकोड़ा। देवदास ने भी इसे देखा।

कुछ देर चुप रहने के बाद माँ ने फिर कहा—तुम्हारे बाबू जी से भी मैंने कहा था।

देवदास ने पूछा—बाबू जी ने क्या कहा?

और क्या कहेंगे। यही कहा कि क्या इतने बड़े वंश का सिर नीचा करेंगे।

देवदास ने फिर कोई बात नहीं पूछी। उसी दिन दोपहर में मनोरमा और पार्वती की बातचीत हुई। पार्वती की आँखों में जल देख कर मनोरमा की आँखें भी

डबडबा आईं। उसने उन्हें पोंछ कर पूछा—तब कौन सा उपाय है बहिन?

पार्वती ने आँखें पोंछ कर कहा—क्या तुमने अपने वर को पसन्द करके विवाह किया था?

"मेरी बात दूसरी है। मुझे पसन्द भी नहीं था और नापसन्द भी नहीं है, इसी से मुझे कोई कष्ट भी नहीं है। पर तुम तो अपने पाँव में आप कुठार मारती हो बहिन!"

पार्वती ने जवाब नहीं दिया, वह मन ही मन कुछ सोचने लगी।

मनोरमा कुछ सोच कर हँसी। पूछा—पत्तो, वर की उम्र क्या है?

"किसके वर की?"

"तुम्हारे!"

पार्वती ने हँस कर कहा—सम्भवतः उन्नीस।

मनोरमा ने विस्मित होकर कहा—यह क्या, मैंने तो सुना है कि चालीस।

इस बार भी पार्वती ने हँस कर कहा—मनो बहिन, कितने आदमियों की उम्र चालीस वर्ष की है, मैं क्या सबका हिसाब रखती हूँ? मेरे वर की उम्र उन्नीस-बीस वर्ष की है—यह मैं जानती हूँ।

उसके मुँह की ओर देख कर मनोरमा ने फिर पूछा—क्या नाम है?

"सो तो तुम जानती ही हो।"

"मैं कैसे जानूँगी।"

"तुम नहीं जानतीं? अच्छा लो, मैं कहे देती हूँ।" ज़रा हँस कर गम्भीरता के साथ पार्वती ने उसके कान के पास अपना मुँह लगा कर कहा—नहीं जानती—श्री० देवदास!

मनोरमा पहले तो चमक उठी। फिर थोड़ा धक्का देकर कहा—इस ठट्ठे से काम नहीं चलेगा। यह कहो कि नाम क्या है? अगर नहीं कह सकती तो......!"

"वही तो मैंने कहा।"

मनोरमा ने ग़ुस्से से पूछा—यदि देवदास नाम है तो फिर इतना रोती क्यों हो?

पार्वती का चेहरा सहसा उतर गया। कुछ सोचने के बाद उसने कहा—यह ठीक है; अब मैं नहीं रोऊँगी।

"पत्तो!"

"क्या?"

सब बातें खोल कर क्यों नहीं कहती बहिन, मैं कुछ भी नहीं समझ पाती हूँ।

पार्वती ने कहा—जो कुछ कहना था, सभी तो मैंने कह दिया।

"परन्तु कुछ भी तो समझ में नहीं आता।"

"न आता होगा।"—यह कह कर पार्वती दूसरी ओर देखने लगी।

मनोरमा ने सोचा कि पार्वती बात छिपाती है, उसकी कुछ कहने की इच्छा नहीं है। उसे बड़ा माख आया, दुःखित होकर उसने कहा—पत्तो, जिसमें तुम्हें दुःख है, उसमें मुझे भी दुःख है। तुम सुखी रहो—यही मेरी आन्तरिक प्रार्थना रहती है। यदि तुम किसी से कोई बात न कहना चाहती हो तो मत कहो, किन्तु इस तरह ठट्ठा करना ठीक नहीं है।

पार्वती ने दुःखित होकर कहा—ठट्ठा नहीं करती हूँ बहिन, जितना मैं जानती हूँ उतना तुम्हें भी बता दिया है। मैं यही जानती हूँ कि मेरे स्वामी का नाम श्री० देवदास है, उम्र उन्नीस या बीस वर्ष है, यही बात तुमसे भी कही है।

"किन्तु मैंने तो सुना है कि तुम्हारा सम्बन्ध दूसरे से स्थिर हुआ है।"

"स्थिर और क्या होगा! दादा का तो अब किसी के साथ ब्याह होगा नहीं, होगा तो मेरे साथ न; मैंने तो ऐसी कोई ख़बर नहीं सुनी है।"

मनोरमा ने जो कुछ सुना था, वह कहने लगी। पार्वती ने बाधा देकर कहा—यह सब मैंने भी सुना है।

"तब क्या देवदास तुमको...?"

"क्या मुझको?"

मनोरमा ने हँसी दबा कर कहा—तब जान पड़ता है,

स्वयम्बर हुआ है ? छिपे-छिपे सब बातचीत पक्की हो गई है ?

"कच्ची-पक्की यहाँ कुछ नहीं हुई है।"

मनोरमा ने व्यथित स्वर से कहा—तू क्या कहती है पत्तो, कुछ भी समझ में नहीं आता।

पार्वती ने कहा—तब देवदास से पूछ कर मैं तुमको समझा दूँगी।

"क्या पूछोगी ? वह तुमसे व्याह करेंगे कि नहीं ?"

पार्वती ने सिर हिला कर कहा—हाँ, यही।

मनोरमा ने बड़े आश्चर्य के साथ पूछा—क्या कहती हो पत्तो, क्या तुम स्वयं पूछोगी ?

"इसमें क्या दोष है बहिन ?"

मनोरमा अवाक् हो गई, बोली—क्या कहती हो ? स्वयं ?

"हाँ, स्वयं नहीं तो और मेरी ओर से कौन पूछेगा ?"

"लाज नहीं लगेगी ?"

"लाज क्यों लगेगी ? तुमसे कहने में क्या मैंने लज्जा की है ?"

"मैं स्त्री हूँ—तुम्हारी सखी हूँ—किन्तु वे तो पुरुष हैं, पत्तो !"

इस पर पार्वती हँस पड़ी; कहा—तुम सखी हो, तुम अपनी हो, किन्तु वे क्या दूसरे हैं ? जो बात तुमसे कह सकती हूँ, क्या वही बात उनसे नहीं कह सकती ?

मनोरमा अवाक् होकर उसके मुँह की ओर देखने लगी।

पार्वती ने हँस कर कहा—मनो बहिन, तुम झूठ ही माथे में सेंदुर पहनती हो। यह भी नहीं जानतीं कि किसको स्वामी कहते हैं। वे मेरे स्वामी न होने पर भी मेरी लज्जा के स्वामी हैं। उनसे ऐसा करने के पहले ही मैं मर न जाऊँगी? इसे छोड़ जो मनुष्य मरने पर उतारू है, क्या वह यह देखता है कि विष कड़ुआ है या मीठा। उनसे मेरा कोई भी परदा नहीं है।

मनोरमा उसके मुँह की ओर देखती रही। कुछ देर बाद पूछा—उनसे क्या कहोगी? यह कहोगी कि मुझे अपने चरणों में स्थान दो!

पार्वती ने सिर हिला कर कहा—ठीक, यही कहूँगी बहिन!

"और यदि वे स्थान न दें?"

इस बार पार्वती कुछ देर तक चुप रही, फिर कहा—उस समय की बात नहीं जानती।

घर लौटते समय मनोरमा ने मन ही मन सोचा, धन्य साहस, धन्य हृदय-बल। यदि मैं मर भी जाऊँ तो भी यह बात मुँह से कभी निकाल नहीं सकती।

बात सत्य है! इसीसे तो पार्वती ने कहा था कि यह माथे में सिन्दूर और हाथ में चूड़ी पहनना व्यर्थ है।

छठा परिच्छेद

लगभग एक बजे रात का समय है, तब भी मलिन ज्योत्स्ना आकाश के अङ्ग से लिपटी हुई है। पार्वती चादर से सिर से पैर तक अपने अङ्ग को ढक कर दबे-पाँव सीढ़ी से नीचे उतर आई। चारों ओर आँख खोल कर देखा—कोई जाग तो नहीं रहा है। फिर दरवाज़ा खोल कर नीरव पथ में आकर खड़ी हुई। गाँव का मार्ग एकदम निस्तब्ध, एकदम निर्जन था—किसी से भेंट होने की आशङ्का नहीं थी। वह बिना किसी रुकावट के ज़मीन्दार के मकान के सामने आकर खड़ी हुई। ड्योढ़ी पर वृद्ध दरबान कृष्णसिंह खाट बिछा, तुलसीकृत रामायण पढ़ रहे थे। पार्वती को प्रवेश करते देख कर उसने नेत्र नीचे किए ही पूछा—कौन है?

पार्वती ने कहा—मैं।

दरबान जी ने समझा कि कोई स्त्री है। दासी समझ

..र फिर कोई प्रश्न नहीं किया और गा-गाकर रामायण पढ़ने में निमग्न हो गए। पार्वती चली गई। गरमी के कारण बाहरी आँगन में कई नौकर सो रहे थे; उनमें से कितने ही पूर्ण निद्रित और कितने ही अर्द्धजाग्रत थे। नींद की झोंक में एकाध ने पार्वती को जाते देखा, लेकिन दासी समझ कर किसी ने कुछ रोक-टोक नहीं की। पार्वती निर्विघ्न सीढ़ी से होकर ऊपर कोठे पर चली गई। इस घर का एक-एक कमरा और एक-एक कोना उसका जाना हुआ था। देवदास के कमरे को पहचानने में उसे ज़रा भी देर नहीं लगी। किवाड़ खुला हुआ था और भीतर एक दीपक जल रहा था। पार्वती ने भीतर आकर देखा, देवदास पलँग पर सो रहे हैं। सिर के पास उस समय भी एक पुस्तक खुली पड़ी थी, इससे जान पड़ता है कि वह अभी ही सोए हैं। दिए की टेम को तेज़ कर वह चुपचाप देवदास के पाँव के पास आकर बैठ गई। केवल दीवाल पर टँगी हुई घड़ी 'टन-टन' शब्द करती है; इसे छोड़ कर सभी सो रहे हैं, सभी जगह सन्नाटा छाया हुआ है। पाँव के ऊपर हाथ रख कर पार्वती ने धीरे से कहा—देव दादा...!

देवदास ने नींद की झाक में सुना कि कोई उसे बुला रहा है। उसने उसी तरह लेटे हुए बिना आँख खोले ही कहा—हूँ!

"देव दादा!"

इस बार देवदास आँख मीचते हुए उठ बैठे। पार्वती के मुँह पर घूँघट नहीं था, घर में दीपक तीव्र ज्योति से जल रहा था, देवदास ने सहज ही पहचान लिया। किन्तु फिर भी उसे पहले विश्वास नहीं हुआ। पूछा—यह क्या! पत्तो?

देवदास ने घड़ी की ओर देखा। विस्मय पर विस्मय बढ़ता गया—इतनी रात में!

पार्वती ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह मुँह नीचे किए बैठी रही। देवदास ने फिर पूछा—इतनी रात में क्या घर से अकेली आई हो?

पार्वती ने कहा—हाँ।"

देवदास ने उद्विग्न, आशङ्कित और कण्टकित होकर पूछा—कहो, क्या रास्ते में डर भी नहीं मालूम हुआ?

पार्वती ने मीठी हंसी हँस कर कहा—मुझे भूत का भय नहीं लगता।

"भूत का भय नहीं करती, तो आदमी का भय तो करती हो; क्यों आई?"

पार्वती ने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु मन ही मन कहा—इस समय मुझे उसका भी डर नहीं है।

"मकान में कैसे आई? क्या किसी ने देखा नहीं?"

"दरबान ने देखा है।"

देवदास ने आँख फाड़ कर देखा, कहा—दरबान ने देखा ? और किसी ने ?

"आँगन में नौकर लोग सो रहे थे, शायद उनमें से किसी ने देखा हो।"

देवदास ने बिछौने से कूद कर किवाड़ बन्द कर दिए—"किसी ने पहचाना भी ?" पार्वती ने कोई भी उत्कण्ठा प्रकट न की। सहज भाव से उत्तर दिया—"वे सभी लोग मुझे जानते हैं, शायद किसी ने पहचाना हो।"

"क्या कहती हो ? ऐसा काम क्यों किया पत्तो ?"

पार्वती ने मन ही मन कहा कि यह तुम किस तरह समझ सकते हो ? किन्तु प्रकट में कुछ नहीं कहा, माथा नवाए बैठी रही।

"इतनी रात में—छिः ! छिः ! कल तुम कौन सा मुँह दिखाओगी ?"

पार्वती ने मुँह नीचे किए हुए ही कहा—वह साहस मुझमें है।

देवदास ने क्रोध नहीं किया, किन्तु बड़ी उत्कण्ठा से कहा—छिः ! छिः ! अब भी क्या तुम लड़की हो ? यहाँ पर इस तरह आते हुए क्या तुम्हें कुछ भी लज्जा नहीं मालूम हुई ?

पार्वती ने सिर हिला कर कहा—कुछ भी नहीं !

"क्या कल लज्जा से तुम्हारा सिर नीचा न होगा ?"

यह प्रश्न सुन कर पार्वती ने तीव्र, किन्तु करुण-दृष्टि से देवदास के मुख की ओर कुछ क्षण देख कर निस्सङ्कोच होकर कहा—सिर तो तब नीचा होता, अगर मैं यह अच्छी तरह से न जानती होती कि तुम मेरी सारी लज्जा को ढँक दोगे।

देवदास ने विस्मित एवं हतबुद्धि होकर कहा—मैं! किन्तु मैं कैसे मुँह दिखा सकूँगा?

पार्वती ने उसी भाँति अविचलित कण्ठ से कहा—तुम? किन्तु तुम्हारा क्या हो सकता है देव दादा? थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने फिर कहा—तुम पुरुष हो। आज नहीं तो कल तुम्हारे कलङ्क की बात सब अवश्य ही भूल जाएँगे। दो दिन के बाद किसी को इसका ध्यान भी नहीं रहेगा कि कब, किस रात में हतभागिनी पार्वती सब कुछ तुच्छ समझ कर तुम्हारे पद-रज में लीन होने आई थी।

"यह क्या पत्तो?"

"और मैं?"

मन्त्र-मुग्ध की भाँति देवदास ने कहा—और तुम?

"मेरे कलङ्क की बात कहते हो? नहीं—मुझे कलङ्क नहीं लगेगा। तुम्हारे पास मैं छिपे-छिपे आई, यदि यह कह कर मेरी निन्दा होगी तो वह निन्दा मुझे नहीं लग सकती।"

"यह क्या पत्तो, रोती हो ?"

"देव दादा, नदी में इतना जल भरा हुआ है। क्या इतने जल में भी मेरा कलङ्क नहीं धुल सकता ?"

सहसा देवदास ने पार्वती के दोनों हाथ पकड़ लिए और कहा—पार्वती !

पार्वती ने देवदास के पाँव के ऊपर सिर रख कर अवरुद्ध कण्ठ से कहा—यहीं पर थोड़ा सा स्थान दो, देव दादा।"

इसके बाद दोनों ही चुप रहे। देवदास के पाँव पर से बह कर अनेकों अश्रु-कण शुभ्र शय्या को भिगोने लगे।

बहुत देर के बाद देवदास ने पार्वती के मुख को ऊपर उठा कर कहा—पत्तो, क्या मुझे छोड़ कर तुम्हें और कोई उपाय नहीं है ?

पार्वती ने कुछ नहीं कहा। उसी भाँति पाँव पर सिर रक्खे हुए पड़ी रही। निस्तब्धता के भीतर एकमात्र वही लम्बी-लम्बी उसासें भर रही थीं। टन-टन करके घड़ी में दो बज गए। देवदास ने कहा—पत्तो !

पार्वती ने रुद्ध कण्ठ से कहा—क्या ?

"पिता-माता बिलकुल सहमत नहीं हैं—यह सुना है ?" पार्वती ने सिर हिला कर जवाब दिया—"सुना है।" फिर दोनों चुप रहे। बहुत देर बाद देवदास ने दीर्घ निश्वास फेंक कर कहा—"तब फिर ?"

पानी में डूबने से मनुष्य जिस प्रकार ज़मीन को पकड़ लेता है और फिर किसी भाँति छोड़ना नहीं चाहता, ठीक उसी भाँति पार्वती ने अज्ञानवत् देवदास के दोनों पाँवों को पकड़ रक्खा था। उसके मुख की ओर देख कर पार्वती ने कहा—मैं कुछ नहीं जानना चाहती हूँ देव दादा।

"पत्तो, माता-पिता की अवज्ञा करें।"

"दोष क्या है?"

"तब तुम कहाँ रहोगी?"

पार्वती ने रोते-रोते कहा—तुम्हारे चरणों में।

फिर दोनों व्यक्ति स्तब्ध बैठे रहे। घड़ी में चार बज गए। ग्रीष्म-काल की रात थी; थोड़ी ही देर में भोर होता हुआ जान कर देवदास ने पार्वती का हाथ पकड़ कर कहा—चलो, तुम्हें घर पहुँचा आवें।

"मेरे साथ चलोगे?"

"हानि क्या है? यदि बदनामी होगी तो कुछ उपाय भी निकल आएगा।"

"तब चलो।"

दोनों धीरे-धीरे बाहर चले गए।

सातवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन पिता के साथ देवदास की थोड़ी देर के लिए कुछ बातचीत हुई। पिता ने उससे कहा—तुम सदा से मुझे जलाते आ रहे हो और जितने दिन इस संसार में जीवित रहूँगा उतने दिन योंही जलाते रहोगे। तुम्हारे मुँह से ऐसी बात का निकलना कोई आश्चर्य नहीं है।

देवदास चुपचाप नीचे मुँह किए बैठे रहे।

पिता ने कहा—मुझे इससे कोई सम्बन्ध नहीं है; जो इच्छा हो, तुम अपनी माँ से मिल कर करो।

देवदास की माँ ने इस बात को सुन कर कहा—अरे, क्या यह भी नौबत मुझे देखनी पड़ी थी?

उसी दिन देवदास माल-असबाब बाँध कर कलकत्ता चले गए। पार्वती उदासीन भाव से कुछ सूखी हँसी हँस कर चुप रही। पिछली रात की बात को उसने किसी से नहीं जनाया। दिन चढ़ने पर मनोरमा आके बैठी और कहा—पत्तो, सुना है कि देवदास चले गए।

"हाँ!"

"तब तुमने क्या उपाय सोचा है?" उपाय की बात वह स्वयं नहीं जानती थी, फिर दूसरे से क्या कहेगी? आज कई दिनों से वह बराबर इसी बात को सोचती रहती है, किन्तु किसी प्रकार यह स्थिर नहीं कर सकी कि उसकी आशा कितनी और निराशा कितनी है। जब मनुष्य ऐसे दुःख के समय में आशा-निराशा का किनारा नहीं देखता तो उसका दुर्बल हृदय बड़े भय से आशा का पल्ला पकड़ता है। जिसमें उसका मङ्गल रहता है, उसी बात की आशा करता है। इच्छा व अनिच्छा से उसी ओर नितान्त उत्सुक नयन से देखता है। पार्वती को अपनी इस दशा में यह पूरी आशा थी कि कल रात के व्यापार के कारण वह निश्चय ही विफल-मनोरथ न होगी, विफल होने पर उसकी अवस्था क्या होगी, यह उसके ध्यान के बाहर की बात है। इसी से सोचती थी देवदास फिर आएँगे। फिर मुझे बुला कर कहेंगे—"पत्तो, तुम्हें मैं शक्ति रहते किसी तरह दूसरे के हाथ न जाने

दूँगा।” किन्तु दो दिन बाद पार्वती ने निम्न-लिखित पत्र पाया :—

“पार्वती, आज दो दिन से बराबर तुम्हारी बातें सोच रहा हूँ। माता-पिता किसी की भी यह इच्छा नहीं है कि हमारा तुम्हारे साथ विवाह हो। तुमको सुखी करने में उन लोगों को ऐसी कठिन वेदना पहुँचानी होगी, जो मुझसे नहीं हो सकती। अतएव उनके विरुद्ध यह काम कर कैसे सकता हूँ ? तुम्हें सम्भवतः अब आगे पत्र न लिख सकूँगा, इसीलिए इस पत्र में सब बातें खोल कर लिखता हूँ। तुम्हारा घराना नीच है। कन्या बेचने और ख़रीदने वाले घर की लड़की माँ किसी तरह भी घर में नहीं ला सकतीं। फिर घर के पास ही तुम्हारा कुटुम्ब ठहरा, यह भी उनके मत से ठीक नहीं है। रही बाबू जी की बात, वह तो तुम सभी जानती हो। उस रात की बात सोच कर मुझे बहुत ही दुःख होता है। कारण, तुम्हारी ऐसी अभिमानिनी लड़की ने वह काम कितनी बड़ी व्यथा पाने पर किया होगा, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

“और भी एक बात है। तुमको मैंने कभी प्यार किया हो, यह बात मेरे मन में नहीं उठती। आज भी तुम्हारे लिए मेरे हृदय में कुछ अत्यधिक क्लेश नहीं है। केवल इसी का मुझे दुःख है कि तुम मेरे लिए कष्ट पा रही हो।

मुझे भूल जाने की चेष्टा करो। यही मेरा आन्तरिक आशीर्वाद है कि तुम इसमें सफल हो।

—देवदास"

जब तक देवदास ने पत्र डाक-घर में नहीं छोड़ा था, तब तक केवल एक बात सोचते रहे; किन्तु पत्र रवाना करने के बाद ही दूसरी बात सोचने लगे। हाथ का ढेला फेंक कर वे एकटक उसी ओर देखते रहे। किसी अनिष्ट की आशङ्का उनके मन में धीरे-धीरे उठने लगी। वे सोचते थे कि यह ढेला उसके सिर पर जाकर कैसा लगेगा? क्या ज़ोर से लगेगा? जीती तो बचेगी? उस रात मेरे पाँव पर अपना सिर रख कर वह कितना रोती थी। पोस्ट-ऑफ़िस से मेस लौटते समय रास्ते में पद-पद पर देवदास के मन में यही भाव उठने लगा। यह काम क्या अच्छा नहीं हुआ? और सबसे बड़ी बात देवदास यह सोचते थे कि पार्वती में जब कोई निजी दोष नहीं है, तो फिर माता-पिता क्यों निषेध करते हैं। उम्र बढ़ने के साथ और कलकत्ता-निवास से उन्होंने एक बात यह सीखी थी कि केवल लोगों को दिखाने के लिए कुल-मर्यादा और एक क्षुद्र विचार के ऊपर निर्भर होके निरर्थक एक प्राण का नाश करना ठीक नहीं। यदि पार्वती हृदय की ज्वाला को शान्त करने के लिए जल में डूब मरे, तो क्या विश्व-पिता के पाँव में इस महापातक का एक काला धब्बा नहीं पड़ेगा?

मेस में आकर देवदास अपनी चारपाई पर पड़ रहे। आजकल वे एक मेस में रहते थे। कई दिन हुए, मामा का घर छोड़ दिया—वहाँ उन्हें कुछ असुविधाएँ होती थीं। जिस कमरे में देवदास रहते हैं, उसी के बग़ल वाले कमरे में चुन्नीलाल नामक एक युवक आज नौ बरस से निवास करते हैं। उनका यह दीर्घ कलकत्ता-निवास बी० ए० पास करने के लिए हुआ था, किन्तु आज तक सफल-मनोरथ नहीं हो सके। यही कह कर वे अब भी यहाँ पर रहते हैं। चुन्नीलाल अपने दैनिक कर्म—सन्ध्या-भ्रमण के लिए बाहर निकले हैं। लगभग भोर होने के समय फिर लौटेंगे। बासा के और लोग भी अभी नहीं आए। नौकर दीपक जला कर चला गया, देवदास किवाड़ लगा कर सो रहे।

धीरे-धीरे एक-एक करके सब लोग लौट आए। खाने के समय देवदास को बुलाया गया, किन्तु वे उठे नहीं। चुन्नीलाल किसी दिन भी रात को लौट कर बासा में नहीं आए थे, आज भी नहीं लौटे।

रात को एक बजे का समय होगया। बासे में देवदास को छोड़ कोई भी नहीं जागता है। चुन्नीलाल ने बासे में लौट कर देवदास के कमरे के सामने खड़े होकर देखा, किवाड़ लगा है, किन्तु चिराग़ जल रहा है, बुलाया—देव-दास, क्या अभी जागते हो?

देवदास ने भीतर से कहा—जागता हूँ। तुम आज इसी समय कैसे लौट आए ?

चुन्नीलाल ने थोड़ा हँस कर कहा—"हाँ, आज तबीयत अच्छी नहीं है।" यह कह कर चले गए। कुछ देर बाद फिर लौट कर कहा—"देवदास, क्या एक बार किवाड़ खोल सकते हो ?"

"क्यों नहीं ?"

"तुम्हारे यहाँ तमाखू का प्रबन्ध है ?

"हाँ, है !"—कह कर देवदास ने किवाड़ खोल दिए। चुन्नीलाल ने तमाखू भरते-भरते कहा—देवदास, अभी तक क्यों जागते हो ?"

"क्या रोज़-रोज़ नींद आती है ?"

"नहीं आती ?" कुछ उपहास करके कहा—"आज तक मैं यही समझता था कि तुम्हारे जैसे भले लड़के ने आधी रात का कभी मुख न देखा होगा, किन्तु आज मुझे एक नई शिक्षा मिली।"

देवदास ने कुछ नहीं कहा। चुन्नीलाल ने तमाखू पीते-पीते कहा—तुम इस बार जब से अपने घर से यहाँ आए हो, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं रहती; तुम्हें कौन सा क्लेश है ?

देवदास अनमने से हो रहे थे। उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया।

"तबीयत अच्छी नहीं है ?"

देवदास सहसा बिछौने से उठ बैठे। व्यग्र भाव से उनके मुख की ओर देख कर पूछा—अच्छा चुन्नीबाबू, तुम्हारे हृदय में किसी बात का क्लेश नहीं है ?

चुन्नीलाल ने हँस कर कहा—कुछ नहीं।

"जीवन-पर्यन्त कभी क्लेश नहीं हुआ ?"

"यह क्यों पूछते हो ?"

"मुझे सुनने की बड़ी इच्छा है।"

"ऐसी बात है तो किसी दूसरे दिन सुनना।"

देवदास ने पूछा—अच्छा चुन्नी, तुम सारी रात कहाँ रहते हो ?

चुन्नीलाल ने मीठी हँसी हँस कर कहा—यह क्या तुम नहीं जानते ?

"जानता हूँ, लेकिन अच्छी तरह नहीं।"

चुन्नीलाल का मुख उत्साह से उज्ज्वल हो उठा। इन सब आलोचनाओं में और कुछ रहे या न रहे, किन्तु एक आँख की ओट की लज्जा रहती है। दीर्घ अभ्यास के दोष से वह भी चली गई। कौतुक से आँख मूँद कर पूछा—देवदास, यदि अच्छी तरह से जानना चाहते हो, तो ठीक मेरी तरह बनना पड़ेगा। कल मेरे साथ चलोगे ?

देवदास ने कुछ देर तक सोच कर कहा—सुनता हूँ, वहाँ पर बड़ा मनोरञ्जन होता है। क्या यह सच है ?

"बिलकुल सच है।"

"यदि ऐसी बात है तो मुझे एक बार ले चलो, मैं भी चलूँगा।"

दूसरे दिन सन्ध्या के समय चुन्नीलाल ने देवदास के कमरे में आकर देखा कि वे व्यस्त भाव से अपना सब माल-असबाब बाँध-छान रहे हैं। विस्मित होकर पूछा— क्या नहीं जाओगे ?

देवदास ने किसी ओर न देख कर कहा—हाँ, जाऊँगा।

"तब यह सब क्या करते हो ?"

"जाने की तैयारी कर रहा हूँ।"

चुन्नीलाल ने कुछ हँस कर सोचा, अच्छी तैयारी है। कहा—क्या तुम सब घर-द्वार वहाँ पर उठा ले चलोगे ?

"तब किसके पास छोड़ जाऊँगा ?"

चुन्नीलाल समझ नहीं सके, कहा—मैं अपनी चीज़-वस्तु किस पर छोड़ जाता हूँ ? सभी तो बासे में पड़ी रहती हैं।

देवदास ने सहसा सचेत होकर आँखें ऊपर को उठाईं, लज्जित होकर कहा—चुन्नीबाबू, आज मैं घर जा रहा हूँ।

"यह क्यों, कब आओगे ?"

देवदास ने सिर हिला कर कहा—अब मैं फिर नहीं आऊँगा।

विस्मित होकर चुन्नीलाल उनके मुँह की ओर देखने लगे। देवदास ने कहा—यह रुपए लो; मुझ पर जो कुछ

उधार हो उसे इससे चुकती कर देना। यदि कुछ बचे तो दास-दासियों में बाँट देना। अब मैं फिर कभी कलकत्ते नहीं लौटूँगा।

देवदास मन ही मन कहने लगे—कलकत्ता आने से मेरा बड़ा ख़र्च पड़ा।

आज यौवन के कुहिराच्छन्न अँधेरे को उनकी दृष्टि भेद कर गई। उस दुर्दान्त, दुर्विनीत कैशोर-कालीन वही अयाचित पद-दलित रत्न समस्त कलकत्ता की तुलना में बहुत बड़ा, बहुत मूल्यवान् जँचने लगा। चुन्नीलाल के मुख की ओर देख कर कहा—चुन्नी! शिक्षा, विद्या, बुद्धि, ज्ञान, उन्नति आदि जो कुछ है, सब सुख के लिए ही हैं। जिस तरह से चाहो, देखो; इन सबका, अपने सुख के बढ़ाने को छोड़ और कोई प्रयोजन नहीं है।

चुन्नीलाल ने बीच में ही बात काट कर कहा—तब क्या अब तुम लिखना-पढ़ना छोड़ दोगे?

"हाँ, लिखने-पढ़ने से मेरा बड़ा नुक़सान हुआ। अगर मैं पहले यह जानता कि इतने दिन में इतना रुपया ख़र्च करके इतना ही सीख सकूँगा, तो मैं कभी कलकत्ते का मुँह न देखता।"

"देवदास, तुम्हें क्या हो गया है?"

देवदास बैठ कर सोचने लगे। कुछ देर बाद कहा—अगर फिर कभी भेंट हुई तो सब बातें कहूँगा।

उस समय प्रायः नौ बजे रात का समय था। बासे के सब लोग तथा चुन्नीलाल ने अत्यन्त विस्मय के साथ देखा कि देवदास गाड़ी पर सब माल-असबाब लदा कर मानो सर्वदा के लिए बासा छोड़ कर घर चले गए। उनके चले जाने पर चुन्नीलाल ने क्रोध से बासे के अन्य लोगों से कहा—ऐसे रँगे सियार के समान आदमी किसी भी तरह नहीं पहचाने जा सकते।



आठवाँ परिच्छेद

बुद्धिमान् तथा दूरदर्शी मनुष्यों की यह नीति होती है कि तत्काल किसी विषय पर अपनी दृढ़ सम्मति प्रकट नहीं करते—एक ही पक्ष को लेकर विचार नहीं करते, एक ही पक्ष को लेकर अपनी धारणा स्थिर नहीं करते, वरन् दोनों पक्षों को लेकर तुलनात्मक दृष्टि से परीक्षा करते हैं और तब कोई अपना गम्भीर मत प्रकट करते हैं। ठीक इसके विपरीत एक श्रेणी के और मनुष्य होते हैं, जिनमें किसी विषय पर विशेष विचार करने का धैर्य नहीं रहता। ये एकाएक अपनी भली-बुरी सम्मति स्थिर कर लेते हैं। किसी विषय में डूब कर विचार करने का श्रम ये लोग स्वीकार नहीं करते, केवल विश्वास के बल चलते हैं। ये लोग संसार में किसी कार्य को न कर सकते हों, यह बात

नहीं है, वरन् काम पड़ने पर समय-समय पर ये लोग औरों की अपेक्षा अधिक कार्य करते हैं। ईश्वर की कृपा होने से ये लोग उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर प्रायः देखे जाते हैं, और न होने से अवनति की गम्भीर कन्दरा में आजन्म के लिए पड़े रहते हैं ; न उठ सकते हैं, न बैठ सकते हैं और न प्रकाश की ओर देख सकते हैं ; निश्चल, मृत, जड़-पिण्ड की भाँति पड़े रहते हैं। देवदास भी इसी श्रेणी के मनुष्य थे। दूसरे दिन प्रातःकाल वे घर पहुँचे। माता ने आश्चर्य से पूछा—देवा, क्या कॉलेज की फिर छुट्टी हो गई ?

देवदास—"हाँ" कह कर अन्यमनस्क भाव से चले गए। पिता के पूछने पर भी कुछ इसी तरह का अट्ट-सट्ट जवाब देकर गला छुड़ाया। उन्होंने अच्छी तरह कुछ न समझ कर गृहिणी से पूछा। गृहिणी ने अपनी बुद्धि लड़ा कर कहा—गरमी अभी घटी नहीं है, इसीलिए फिर छुट्टी हो गई।

दो दिन देवदास ने बड़ी चुस्ती के साथ बिताए। उसकी जो अभिलाषा थी वह पूरी नहीं हो रही थी—पार्वती से किसी निर्जन स्थान पर भेंट नहीं होती थी। दो दिन बाद पार्वती की माँ ने देवदास को सामने देख कर कहा—अगर इधर आ गए हो, तो पार्वती के विवाह तक ठहर जाओ।

देवदास ने कहा—अच्छा।

दोपहर के समय पार्वती नित्य बाँध से जल लाने के लिए जाती थी। बग़ल में पीतल की कलसी लेकर आज भी वह घाट पर आई, देखा, निकट ही एक बेर के पेड़ की आड़ में देवदास जल में बंसी फेंक कर बैठे हैं। एक बार उसके मन में आया कि लौट चले, एक बार मन में आया कि चुपके से जल भर कर ले चले। किन्तु जल्दी में वह कुछ भी स्थिर न कर सकी। कलसी को घाट पर रखते समय सम्भवतः कुछ शब्द हुआ, इसीसे देवदास की दृष्टि उस ओर खिंच गई। उसने पार्वती को देख, हाथ के इशारे से बुला कर कहा—पत्तो, सुन जाओ।

पार्वती धीरे-धीरे पास जाकर खड़ी हुई। देवदास ने एक बार मुख उठाया, फिर बहुत देर तक शून्य दृष्टि से जल की ओर देखते रहे। पार्वती ने कहा—देव दादा, मुझे कुछ कहते हो?

देवदास ने किसी ओर न देख कर कहा—हूँ, बैठो।

पार्वती बैठी नहीं, सिर नीचा किए खड़ी रही। किन्तु जब कुछ देर तक कोई बातचीत नहीं हुई, तो पार्वती ने धीरे-धीरे एक-एक पाँव घाट की ओर बढ़ाना आरम्भ किया। देवदास ने एक बार सिर उठा कर उसकी ओर देखा, फिर जल की ओर देख कर कहा—सुनो!

पार्वती लौट आई, किन्तु फिर भी देवदास ने कोई

बात नहीं कही, यह देख वह फिर लौट गई। देवदास निस्तब्ध बैठे रहे, थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर देखा, पार्वती जल लेकर जाने की तैयारी कर रही है। यह देख वे बंसी हटा कर घाट के ऊपर आ खड़े हुए; कहा—"मैं आया हूँ।" पार्वती ने केवल घड़ा उतार कर रख दिया, कुछ बोली नहीं।

पार्वती कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही, अन्त में अत्यन्त मीठे स्वर से पूछा—क्यों?

"तुमने लिखा नहीं था?"

"नहीं!"

"यह क्या पत्तो! उस रात की बात भूल गई?"

"नहीं; किन्तु उस बात से अब काम ही क्या?"

उसका कण्ठ-स्वर स्थिर, किन्तु रूखा था। देवदास उसका मर्म नहीं जान सके, कहा—मुझे क्षमा करो, मैं तब इतना नहीं समझ सका था।

"चुप रहो, ये सब बातें मुझे नहीं सुहातीं।"

"मैं जिस तरह से होगा, माँ-बाप को राज़ी करूँगा। सिर्फ़ तुम......।"

"पार्वती ने देवदास के मुँह की ओर एक बार तीखी नज़र से देख कर कहा—तुम्हारे ही माँ-बाप हैं, मेरे नहीं? क्या उनकी इच्छा-अनिच्छा से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है?

देवदास ने लज्जित होकर कहा—क्यों नहीं हैं पत्तो, पर वे लोग तो राज़ी हैं—सिर्फ़ तुम......!

"तुम कैसे जानते हो कि वे लोग राज़ी हैं, वे बिलकुल राज़ी नहीं हैं।"

देवदास ने हँसने की व्यर्थ चेष्टा करके कहा—अरे नहीं, वे लोग बिलकुल राज़ी हैं ; यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। सिर्फ़ तुम......!

पार्वती ने बीच में ही बात काट कर तीव्र-कण्ठ से कहा—"सिर्फ़ मैं तुम्हारे साथ ? छिः...!" पल मारते देवदास की दोनों आँखें अग्नि की तरह जल उठीं। उसने कठिन कण्ठ से कहा—"पार्वती, क्या मुझे भूल गई ?"

पहले पार्वती भी कुछ चञ्चल हो उठी, किन्तु दूसरे ही क्षण आत्म-संवरण कर शान्त और कठिन स्वर से उत्तर दिया—"नहीं, भूलूँगी क्यों ? लड़कपन से ही तुमको देखती आती हूँ। होश सँभाला तभी से तुमको डरती हूँ—क्या उसी डर को तुम मुझे दिखाने आए हो ? पर क्या मुझे भी तुम नहीं पहचानते ?" यह कह कर वह निर्भीक दोनों आँखों को ऊपर उठा कर खड़ी हो रही।

पहले देवदास के मुँह से कोई बात नहीं निकली, फिर कहा—सर्वदा से मुझसे तुम डरती ही आती हो और कुछ नहीं ?

पार्वती ने दृढ़ स्वर से कहा—नहीं, और कुछ नहीं।

"सच कहती हो?"

"हाँ, सच कहती हूँ। तुम पर मेरी कुछ भी श्रद्धा नहीं है। मैं जिसके यहाँ जा रही हूँ, वे धनवान्, बुद्धिमान्, शान्त और स्थिर हैं। वे धार्मिक हैं। मेरे बाप मेरा भला सोचते हैं, इसी से वे तुम्हारे जैसे एक अज्ञान, अव्यवस्थित चित्त, दुर्दान्त मनुष्य के हाथ किसी तरह नहीं देना चाहते। तुम रास्ता छोड़ दो।"

एक बार देवदास ने कुछ इधर-उधर किया; एक बार वे रास्ता छोड़ने के लिए भी तैयार हुए; परन्तु फिर दृढ़ता के साथ मुँह उठा कर कहा—इतना अहङ्कार?

पार्वती ने कहा—क्यों नहीं? तुम कर सकते हो और मैं नहीं? तुममें रूप है, गुण नहीं—मुझमें रूप भी है, गुण भी हैं। तुम बड़े आदमी हो, लेकिन मेरे पिता भी भिक्षुक नहीं हैं। इसे छोड़ मैं स्वयं भी तुम लोगों से किसी अंश में हीन नहीं रहूँगी।

देवदास अवाक् रह गए। पार्वती ने फिर कहना आरम्भ किया—तुम क्या सोचते हो कि तुम मुझे हानि पहुँचाओगे? हाँ, अधिक नहीं, तो कुछ हानि अवश्य पहुँचा सकते हो, यह मैं जानती हूँ। अच्छा वही करो। मुझे सिर्फ़ रास्ता दो।

देवदास ने हतबुद्धि होकर कहा—हानि किस तरह पहुँचा सकता हूँ?

पार्वती ने तत्क्षण उत्तर दिया—अपवाद लगा कर वह बात तुम कहोगे।

यह बात सुन कर देवदास वज्राहत की तरह देखते रहे। उनके मुख से केवल यही बात निकली—अपवाद लगाऊँगा, मैं ?

पार्वती ने विषैली हँसी हँस कर कहा—"जाओ, बचे हुए समय में मेरे नाम में कलङ्क लगाओ ; उस रात में मैं तुम्हारे पास अकेली गई थी, इसी बात को लेकर लोगों में चारों ओर फैलाओ। इससे मन को बड़ी सान्त्वना मिलेगी।" यह कहते-कहते पार्वती के दर्पित क्रुद्ध ओष्ठ काँपते-काँपते स्थिर हो गए।

किन्तु देवदास के हृदय में क्रोध और अपमान से ज्वालामुखी पर्वत की भाँति भीषण अग्नि सुलग रही थी। उसने अव्यक्त स्वर से कहा—"झूठी बदनामी उठा कर मैं सान्त्वना पाऊँगा ?" और उसी समय बंसी के मुठिए को घुमा कर, पकड़ कर भीषण कण्ठ से कहा—"सुनो पार्वती, इतना रूप होना ठीक नहीं, अहङ्कार बहुत बढ़ जाता है।" यह कह कर तनिक धीमे स्वर से कहा—"देखती नहीं हो चन्द्रमा इतना सुन्दर है, इसी से उसमें कलङ्क का काला धब्बा लगा है ; कमल इतना श्वेत है इसी लिए उसमें काले भौंरे बैठते हैं। आओ तुम्हारे मुँह में भी कुछ कलङ्क का चिन्ह दे दूँ।"

देवदास के सह्य की सीमा जाती रही। उन्होंने दृढ़ मुट्ठी से बंसी के मुठिए को पकड़ कर इतने ज़ोर से पार्वती के सिर में मारा कि लगने के साथ ही सिर बाएँ भौं के नीचे तक फूट गया। पल भर में सारा मुख ख़ून से सराबोर हो गया।

पार्वती पृथ्वी पर गिर पड़ी। कहा—देव दादा, क्या किया?

देवदास ने बंसी को टुकड़े-टुकड़े कर, पानी में फेंक, उत्तर दिया—अधिक कुछ नहीं, ज़रा सा कट गया है।

पार्वती आकुल कण्ठ से रो उठी—बाप रे बाप, देव दादा!

देवदास ने अपने बारीक़ कुरते को फाड़ कर पानी में भिगो कर बाँधते हुए कहा—घबराओ नहीं पत्तो, यह हलकी सी चोट जल्दी ही अच्छी हो जायगी, सिर्फ़ दाग़ रह जायगा। यदि कोई इसके विषय में पूछे तो झूठी बात कहना, नहीं तो अपने कलङ्क की बात प्रकट करना।

"अरे बाप रे बाप!"

"छिः! ऐसा न कहो पत्तो! बिदाई के अन्तिम दिनों में सिर्फ़ एक निशान बनाए रखने के लिए यह चिन्ह दे दिया है। इस सोने से मुख को तुम आरसी में कभी-कभी देखोगी तो?" यह कह कर उत्तर पाने की कोई अपेक्षा न कर देवदास चलने के लिए तैयार हुए।

पार्वती ने व्याकुल होकर रोते-रोते कहा—उफ़ ! देव दादा।

देवदास लौट आए। आँख के कोने में एक विन्दु जल था। बहुत स्नेह भरे कण्ठ से कहा—क्यों पत्तो ?

"किसी से कहना मत।"

देवदास ने क्षण भर में ही खड़े होके झुक कर पार्वती के केशों को ऊपर उठा कर अधर स्पर्श कर कहा—छिः ! तुम क्या कोई दूसरी हो ? शायद तुम्हें याद न हो, बचपन में मैंने शरारत से कई बार तुम्हारे कान मल दिए हैं।

"देव दादा, मुझे क्षमा करो।"

"यह तुम्हें नहीं कहना होगा भाई, क्या सचमुच ही मुझे भूल गई पत्तो ? मैंने कब तुमको क्षमा नहीं किया है ?"

"देव दादा......!"

"पार्वती, तुम तो जानती ही हो, मैं अधिक बातें नहीं कर सकता। बहुत सोच-विचार कर कोई काम मुझसे नहीं हो सकता, जो मन में आता है वही कर बैठता हूँ।" यह कह कर देवदास ने पार्वती के सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद देते हुए कहा—"तुमने अच्छा ही किया। मेरे यहाँ रह कर सम्भवतः तुम सुख नहीं पाती, किन्तु तुम्हारे इस देव दादा को अक्षय स्वर्ग-सुख मिलता।"

इसी समय बाँध की दूसरी ओर से कई आदमी आ

रहे थे। पार्वती धीरे-धीरे जल लेने के लिए उतरी थी। देवदास चले गए। पार्वती जब घर लौट कर आई, तो दिन ढल गया था। दादी ने उसे देख कर कहा—पत्तो, क्या पोखरा खन के पानी लाती है?

किन्तु उसके मुँह की बात मुँह में ही रह गई। पार्वती के मुँह की ओर देखते ही चिल्ला उठी—बाप रे बाप, यह क्या हुआ?

घाव से तब भी ख़ून बह रहा था। कपड़े का टुकड़ा प्रायः सब ख़ून से तर हो गया था। रोते-रोते कहा—बाप रे बाप, तेरा ब्याह है पत्तो!

पार्वती ने स्थिर भाव से कलसी उतार कर नीचे रख दी। माँ ने आकर रोते-रोते पूछा—यह चोट कैसे लगी?

पत्तो ने सहज भाव से उत्तर दिया—घाट पर पाँव फिसल जाने से सिर के बल ईंटे पर गिर पड़ी थी जिससे कुछ चोट आ गई।

इसके बाद सब मिल कर शुश्रूषा करने लगे। देवदास ने सच कहा था—'आघात अधिक नहीं है।' चार-पाँच दिनों में वह सूख गया। इसी भाँति आठ-दस दिन बीत गए। फिर एक दिन रात के समय हाथीपोता गाँव के ज़मीन्दार भुवनमोहन चौधरी वर बन कर विवाह करने के लिए आए। उत्सव बहुत तड़क-भड़क के साथ नहीं मनाया गया। भुवन बाबू नासमझ आदमी नहीं थे—इस प्रौढ़ा-

वस्था में दूसरा विवाह करने के समय छोकड़ा बन कर आना ठीक नहीं।

वर की उम्र चालीस वर्ष नहीं, कुछ ऊपर ही है, गौर वर्ण और मोटा सा थलथल शरीर है। कच्ची-पक्की मूँछें मिल कर खिचड़ी हो रही थीं और सिर का अगला भाग सफ़ाचट हो रहा था। वर को देख कर कोई हँसा और कोई चुप हो रहा। भुवन बाबू शान्त-गम्भीर मुख से किसी अपराधी की भाँति विवाह-मण्डप में आकर खड़े हुए। कोहबर में स्त्रियों ने उनके साथ हँसी-मज़ाक़ नहीं किया। कारण, ऐसे विज्ञ, गम्भीर मनुष्य के साथ हँसी करने का किसी को साहस नहीं हुआ। शुभ-दृष्टि के समय पार्वती किचकिचा-किचकिचा कर देखती रही। ओठ के कोण में थोड़ी हसी की रेखा भी थी। भुवन बाबू ने छोटे बच्चों की तरह दृष्टि नीची कर ली। गाँव की स्त्रियाँ खिलखिला कर हँस रही थीं। चक्रवर्ती महाशय इधर-उधर दौड़-धूप कर रहे थे। प्रवीण जामाता को पाकर वे कुछ व्यस्त से हो उठे। ज़मीन्दार नारायण मुखोपाध्याय आज कन्या-पक्ष के सब कर्त्ता-धर्त्ता थे। वे पक्के प्रबन्धकर्त्ता थे। किसी भी तरह की त्रुटि नहीं होने पाई। शुभ-कर्म भली-भाँति समाप्त हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल चौधरी महाशय ने एक बॉक्स गहना बाहर निकाल कर रख दिया। ये सब गहने पार्वती

के शरीर में जगमगा उठे। माता ने इसे देख आँचल से आँख का आँसू पोंछा। पास ही ज़मीन्दारिन खड़ी थीं, उन्होंने सस्नेह तिरस्कार करके कहा—आज आँख का आँसू बहा कर अशुभ न करो बहिन!

सन्ध्या के कुछ पहले मनोरमा ने पार्वती को एक निर्जन घर में ले जाकर आशीर्वाद दिया। कहा—जो हुआ, अच्छा ही हुआ, अब देखोगी कि तुम पहले से कितनी सुखी हो।

पार्वती ने थोड़ा हँस कर कहा—हाँ होऊँगी। जम के साथ कल थोड़ा परिचय हुआ है न?

"यह कैसी बात?"

"समय पर सब देख लोगी।" मनोरमा ने बात को दूसरी ओर घुमा कर कहा—"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो एक बार देवदास को, इस सोने की प्रतिमा को लाकर दिखाऊँ।"

पार्वती चमक उठी—ला सकती हो बहिन! क्या एक बार बुला कर नहीं ला सकतीं?

मनोरमा का कण्ठ-स्वर सिहर उठा—क्यों पत्तो?

पार्वती ने हाथ का कड़ा घुमाते-घुमाते अन्यमनस्क भाव से कहा—एक बार उनके पाँव की धूल को सिर पर चढ़ाऊँगी—आज जाऊँगी न!

मनोरमा ने पार्वती को छाती से लगा लिया, फिर दोनों बहुत देर तक रोती रहीं। सन्ध्या हो गई, अन्धकार बढ़ गया। दादी ने द्वार ठेल कर बाहर से ही कहा—ओ पत्तो, ओ मनो, तुम लोग ज़रा बाहर आना बहिन!

उसी रात पार्वती स्वामी के घर चली गई।



नवाँ परिच्छेद

और देवदास ? उन्होंने उस दिन कलकत्ते के इडन गार्डन की एक बेञ्च पर बैठे-बैठे सारी रात बिता दी। उन्हें अत्यन्त क्लेश अथवा मार्मिक वेदना हुई हो, यह बात नहीं है। उनके हृदय में न जाने कैसा एक शिथिल-उदासीन भाव धीरे-धीरे जमा हो रहा था। निद्रित अवस्था में हठात् शरीर के किसी एक अङ्ग में पत्ताघात हो जाने से नींद टूटने पर जैसे उसके ऊपर ढूँढ़ने पर भी अपना कोई अधिकार नहीं पाने से विस्मित और स्तम्भित मन को ठीक नहीं कर पाते, क्योंकि उसका आजन्म का साथी, सर्वदा का विश्वासी अङ्ग उसके आह्वान का कोई प्रत्युत्तर नहीं देता ; धीरे-धीरे समझ आती है और धीरे-धीरे ज्ञान उत्पन्न होता है कि अब उस पर अपना कोई अधिकार नहीं है, देवदास भी ठीक उसी भाति धीरे-धीरे समझ रहे थे कि समय और संसार

में अकस्मात् वज्राघात होने से उनसे सर्वदा के लिए विलग हो गए। अब उनके ऊपर मिथ्या क्रोध और अभिमान करके कुछ नहीं किया जा सकता। अधिक अधिकार की बात सोचने से भी भारी भूल होगी। उस समय सूर्योदय हो रहा था। देवदास ने खड़े होकर सोचा, कहाँ चलूँ? हठात् स्मरण हुआ कि कलकत्ते के उसी मेस में। वहाँ पर चुन्नीलाल हैं। देवदास उसी ओर चलने लगे। रास्ते में दो बार धक्का खाया, ठोकर खाने से उँगली लहूलहान हो गई। धक्का लगने से एक आदमी के शरीर पर गिर रहे थे, उसने मतवाला कह कर ढकेल दिया। इसी भाँति भटकते-भटकते सन्ध्या के समय मेस के दरवाज़े पर आकर खड़े हुए। उस समय चुन्नी बाबू सज-धज कर बाहर जा रहे थे—यह क्या देवदास?

देवदास चुपचाप देखते रहे। "कब आए? मुँह सूखा हुआ है—नहाना-खाना क्या अब तक कुछ नहीं हुआ है?" देवदास रास्ते में ही बैठ गए। चुन्नीलाल हाथ पकड़ कर भीतर ले गए। अपनी शय्या पर बैठा कर शान्त करके पूछा—क्या मामला है देवदास?

"कल मकान से आया हूँ?"

"कल सारे दिन कहाँ थे? रात भी कहाँ थे?"

"इडन गार्डन में।"

"पागल तो नहीं हो। क्या हुआ है?"

"सुन कर क्या करोगे?"

"नहीं कहो, अभी खाओ-पियो। तुम्हारा सामान कहाँ है?"

"कुछ भी साथ नहीं लाया हूँ।"

"अच्छा रहने दो, अभी चल कर खाओ-पियो।"

तब चुन्नीलाल ने ज़ोर देकर खिलाया-पिलाया; शय्या पर सोने का आदेश देकर दरवाज़ा बन्द करते-करते कहा—"अभी थोड़ी सोने की चेष्टा करो, मैं रात में आकर तुम्हें उठाऊँगा।" यह कह कर वे उस समय तक के लिए चले गए। रात में दस बजे उन्होंने लौट कर देखा कि देवदास उनके बिछौने पर गाढ़ी नींद में सो रहे हैं। उन्हें जगाया नहीं। एक कम्बल ओढ़ कर नीचे चटाई पर सो रहे। रात भर देवदास की नींद नहीं टूटी और प्रातः काल में भी सोते ही रहे। दस बजे उठ कर बैठे। पूछा—"चुन्नी बाबू कब आए?"

"अभी आया हूँ।"

"तुम्हें किसी तरह का कष्ट तो नहीं हुआ?"

"कुछ भी नहीं।"

देवदास ने कुछ देर तक उनके मुँह की ओर देख कर कहा—चुन्नी बाबू, मेरे पास कुछ नहीं है, क्या तुम मुझे आश्रय दोगे?

चुन्नीलाल कुछ हँसे। वे जानते थे कि देवदास के पिता बड़े धनवान् व्यक्ति हैं। इसी से हँस कर कहा—मैं आश्रय दूँगा ? अच्छी बात है, तुम्हारी जितने दिन इच्छा हो, यहाँ पर रहो, कोई चिन्ता नहीं।

"चुन्नी बाबू, तुम्हारी आमदनी कितनी है ?"

"भाई, मेरी आमदनी मामूली है। मकान पर कुछ ज़मीन्दारी है। उसे भाई साहब को सौंप कर मैं यहाँ रहता हूँ। वे हर महीने सत्तर रुपए के हिसाब से भेज देते हैं। इतने में तुम्हारा और मेरा ख़र्च अच्छी तरह से चल जायगा।"

"तुम मकान क्यों नहीं जाते ?"

चुन्नीलाल ने उधर मुँह फिरा कर कहा—बहुत सी बात हैं।

देवदास ने और कुछ नहीं पूछा। धीरे-धीरे भोजन आदि की बुलाहट आई। इसके बाद दोनों आदमी स्नान-भोजनादि समाप्त करके फिर घर में आकर बैठे। चुन्नीलाल ने पूछा—देवदास, क्या बाप के साथ कुछ झगड़ा हो गया है ?

"नहीं।"

"और किसी के साथ ?"

देवदास ने उसी भाँति जवाब दिया—नहीं।

इसके बाद चुन्नीलाल को सहसा दूसरी बात का

स्मरण आया। कहा—ओहो, तुम्हारा तो अभी तक ब्याह नहीं हुआ है!

इसी समय देवदास दूसरी ओर मुँह फेर कर सो रहे। थोड़ी ही देर में चुन्नीलाल ने देखा कि देवदास सो गए। इसी भाँति सोते-सोते और भी दो दिन बीत गए। तीसरे दिन प्रातःकाल देवदास स्वस्थ होकर बैठे थे। मुख से ऐसा जान पड़ता था मानो वह घनी छाया बहुत कुछ हट गई हो। चुन्नीलाल ने पूछा—आज तबीयत कैसी है?

"पहले से अच्छी जान पड़ती है। अच्छा चुन्नी बाबू, रात में तुम कहाँ जाते हो?" आज चुन्नीलाल ने लज्जित होकर कहा—"हाँ, मैं जाता हूँ, पर उसकी कौन बात है? अच्छा, आज कॉलेज जाओगे न?"

"नहीं लिखना-पढ़ना छोड़ दिया।"

"छिः! ऐसा भी हो सकता है, दो महीने बाद तुम्हारी परीक्षा होगी! पढ़ना भी तुम्हारा ख़राब नहीं है। इस साल परीक्षा दो न!"

"नहीं, पढ़ना छोड़ दिया।"

चुन्नीलाल चुप हो रहे। देवदास ने फिर पूछा—कहाँ जाते हो—कहो न, तुम्हारे साथ मैं भी चलूँगा।

चुन्नीलाल ने देवदास के मुँह की ओर देख कर कहा—उसे जान कर क्या करोगे, मैं कुछ अच्छी जगह नहीं जाता।

देवदास ने अपने मन ही मन कहा—अच्छी हो या बुरी, इससे क्या मतलब; चुन्नी बाबू मुझे साथ ले चलोगे या नहीं ?

"ले चल सकता हूँ, किन्तु मत चलो।"

"नहीं, मैं चलूँगा। अगर अच्छा नहीं लगेगा, तो मैं फिर न जाऊँगा। पर तुम जिस सुख की आशा से नित्य उन्मुख रहते हो......! जो हो चुन्नी बाबू, मैं निश्चय चलूँगा।"

चुन्नीलाल ने मुँह फेर, कुछ हँस के मन ही मन कहा—"मेरी दशा।" प्रकट में कहा—"अच्छा चलना।"

सन्ध्या के कुछ पहले ही धर्मदास चीज़-वस्तु लेकर आ पहुँचा। देवदास को देख कर रोते-रोते कहा—देवदास, आज तीन-चार दिन हुए, माँ कितना रो रही है।

"क्यों रोती है ?"

"बिना किसी से कहे-सुने जो एकाएक चले आए।" एक पत्र बाहर निकाल कर हाथ में देकर कहा—"माँ की चिट्ठी है।"

चुन्नीलाल भीतर ही भीतर ख़बर जानने के लिए उत्सुक भाव से देख रहे थे। देवदास ने पत्र पढ़ कर रख दिया। माँ ने घर पर आने के लिए बड़े अनुरोध के साथ बुलाया है। घर में वे ही केवल देवदास के मानसिक कष्ट का कुछ-कुछ अनुमान कर सकी थीं। धर्मदास के हाथ छिपा कर

बहुत सा रुपया भी भेज दिया था। धर्मदास ने वह सब देवदास के हाथ में देकर कहा—देवदास, घर चलो।

"मैं नहीं जाऊँगा। तुम लौट जाओ।"

रात में दोनों मित्र सज-धज के बाहर निकले। देवदास की इन सबकी ओर प्रवृत्ति नहीं थी; किन्तु चुन्नीलाल साधारण पोशाक पहन कर बाहर चलने पर राज़ी नहीं हुए। रात के नौ बजे के समय एक किराए की गाड़ी चितपुर के एक दोतल्ले मकान के सामने आकर खड़ी हुई। चुन्नीलाल देवदास का हाथ पकड़े हुए भीतर चले गए। गृह-स्वामिनी का नाम चन्द्रमुखी है—उन्होंने आकर अभ्यर्थना की। इस समय देवदास का सारा शरीर जल उठा। वे इधर कई दिनों से अपनी अज्ञानता में नारी-देह की छाया के ऊपर भी विद्वेष करने लग गए थे, यह वह स्वयं नहीं जानते थे। चन्द्रमुखी को देखते ही हृदय की सञ्चित घृणा दावानल की भाँति प्रज्ज्वलित हो उठी। चुन्नीलाल के मुख की ओर देख कर भौं चढ़ा कर कहा—"चुन्नीलाल, यह किस मनहूस जगह में ले आए?" उनके तीव्र कण्ठ और आँख की दृष्टि देख कर चन्द्रमुखी और चुन्नीलाल दोनों ही हतबुद्धि से हो गए। दूसरे ही क्षण चुन्नीलाल ने अपने को सँभाल कर देवदास का एक हाथ पकड़ कर कोमल कण्ठ से कहा—चलिए, भीतर चल कर बैठिए।

देवदास कुछ नहीं बोले, कमरे में जाकर बिछौने पर गरदन झुका के विपन्न मुख बैठ गए। पास ही चन्द्र-मुखी भी चुपचाप बैठ गई। दासी तमाकू भर के चाँदी से मढ़ा हुआ नारियल लाई। देवदास ने स्पर्श भी नहीं किया। चुन्नीलाल गम्भीर-मुख बैठ रहे। दासी क्या करे, यह निश्चय न कर सकी। अन्त में चन्द्रमुखी के हाथ में नारियल देकर चली गई। दो-एक फूँक खींचने के समय देवदास ने उसके मुख की ओर देखा, और एकाएक अत्यन्त घृणा से कह उठे—कितनी असभ्या और श्रीहीना है।

इसके पहले चन्द्रमुखी को बातचीत में कोई हरा नहीं सका था। उसको अप्रतिभ करना ज़रा टेढ़ी खीर थी। देवदास के इस आन्तरिक घृणा की सरल और कठिन उक्ति उसके हृदय में बिंध गई। किन्तु कुछ देर बाद ही उसने अपने को संयत कर लिया। परन्तु चन्द्रमुखी के मुख से धूआँ नहीं निकला। तब चुन्नीलाल के हाथ में हुक़ा देकर उसने फिर एक बार देवदास के मुख की ओर देखा और फिर निःशब्द बैठी रही। तीनों ही निर्विकार हो रहे थे। केवल बीच-बीच में गड़-गड़ करके हुक़्के का शब्द होता था, वह भी मानो डरते-डरते। मित्र-मण्डली में तर्क उठने पर एकाएक निरर्थक कलह हो जाने से जैसे प्रत्येक अपने मन ही मन फूले रहते हैं और क्षुब्ध अन्तः-करण से कहते हैं कि—"यही तो!" उसी भाँति तीनों

आदमी मन ही मन कह रहे थे—"यही तो, यह कैसा हुआ ?"

जो हो, तीनों में से किसी को भी आनन्द नहीं मिला। चुन्नीलाल तो हुक्का रख कर नीचे उतर आए, शायद उन्हें कोई दूसरा काम नहीं मिला। इसलिए कमरे में अब केवल दो आदमी रह गए। देवदास ने मुख उठा कर पूछा—तुम अपनी दर्शनी लेती हो ?

चन्द्रमुखी ने सहसा कोई उत्तर नहीं दिया। इस समय उसकी उम्र छब्बीस वर्ष की थी। इस नौ-दस वर्ष के बीच में उसका कितने ही विभिन्न प्रकृति के मनुष्यों के साथ घनिष्ट परिचय हो चुका था, किन्तु इस प्रकार के अद्भुत मनुष्य से एक दिन भी भेंट नहीं हुई थी। कुछ इधर-उधर करके उसने कहा—आपके पाँव की धूल जब पड़ी है......!

देवदास ने बात समाप्त नहीं होने दी, बीच में ही कह उठे—पाँव की धूल की बात नहीं, रुपया लेती हो ?

"उसके न लेने से हम लोगों का काम कैसे चलेगा ?"

"बस—यही सुनना चाहता हूँ।" यह कह कर उन्होंने पॉकेट से एक नोट निकाला और चन्द्रमुखी के हाथ में देकर चलने की तैयारी की। एक बार देखा भी नहीं कि कितना रुपया दिया।

चन्द्रमुखी ने विनीत भाव से कहा—इतनी जल्दी जायँगे ?

देवदास ने कुछ नहीं कहा, बरामदे में आकर चुप-चाप खड़े हो गए।

चन्द्रमुखी की एक बार इच्छा हुई कि रुपया लौटा दे, किन्तु किसी तीव्र सङ्कोच के कारण न लौटा सकी। सम्भवतः उसे कुछ डर भी मालूम हुआ था। इसे छोड़, उसे अनेकों लाञ्छना, भर्त्सना और अपमान सहने का अभ्यास है, इसीलिए निर्वाक्, निस्पन्द चौखट के ऊपर खड़ी रही। देवदास सीढ़ी से नीचे उतर गए।

सीढ़ी पर ही चुन्नीलाल से भेंट हुई। उन्होंने आश्चय से पूछा—कहाँ जाते हो?

"बासे को जाता हूँ।"

"यह क्यों?"

देवदास और दो-तीन सीढ़ी उतर गए।

चुन्नीलाल ने कहा—मैं भी चलता हूँ।

देवदास के पास आकर उनका हाथ पकड़ कर कहा—चलो, थोड़ा यहीं पर खड़े रहो, मैं ऊपर से होकर अभी आता हूँ।

"नहीं, मैं जाता हूँ; तुम फिर आना।"—यह कह कर देवदास चले गए।

चुन्नीलाल ने ऊपर आकर देखा, चद्रमुखी तब भी उसी भाँति चौखट पर खड़ी है।

उसे देख कर पूछा—वह चले गए?

"हाँ।"

चन्द्रमुखी ने हाथ का नोट दिखा कर कहा—यह देखो, अच्छा होगा इसे ले जाओ, अपने मित्र को लौटा दो।

चुन्नीलाल ने कहा—वे अपनी इच्छा से दे गए हैं, फिर मैं क्यों लौटा ले जाऊँ?

इतनी देर बाद चन्द्रमुखी थोड़ा हँसी, किन्तु उस हँसी में आनन्द का लेश नहीं था। उसने कहा—इच्छा से नहीं; मैं रुपया लेती हूँ, इसीसे क्रोध करके दे गए हैं। हाँ चुन्नी बाबू, वह क्या पागल है?

"कुछ भी नहीं। आज कई दिन से शायद उनका मन ठीक नहीं है।"

"क्यों नहीं मन ठीक है, कुछ जानते हो?"

"मैं नहीं जानता, शायद मकान पर कुछ हुआ है।"

"तब यहाँ पर क्यों लाए?"

"मैं नहीं लाता था, वे ख़ुद ही ज़ोर देकर आए थे।"

चन्द्रमुखी इस बार यथार्थ में विस्मित हुई। कहा—ख़ुद ज़ोर देकर आए! सब जान कर!

चुन्नीलाल ने कुछ सोच कर कहा—और नहीं तो क्या? वे सभी जानते हैं। मैं भुलवा कर नहीं लाया।

चन्द्रमुखी कुछ देर तक चुप रही, फिर न जाने क्या सोच कर कहा—चुन्नी, मेरा एक उपकार करोगे?

"क्या?"

"तुम्हारे मित्र कहाँ रहते हैं ?"

"मेरे ही साथ।"

"एक दिन उन्हें और ला सकते हो ?"

"यह मैं नहीं कर सकता। इसके पहले वे किसी ऐसी जगह पर नहीं गए थे और भविष्य में भी अब किसी ऐसी जगह पर जाने की उम्मीद नहीं है। किन्तु क्यों, यह तो बताओ।"

चन्द्रमुखी ने एक मलिन हँसी हँस कर कहा—चुन्नी, चाहे जैसे हो, एक बार उन्हें और लिवा लाओ।

चुन्नी ने मुस्करा तथा आँखें मार कर कहा—धमकी पाने से कहीं प्रेम उत्पन्न हुआ है क्या ?

चन्द्रमुखी भी मुस्कराई, कहा—नहीं देखा, नोट दे गए हैं, इतना भी नहीं समझते !

चुन्नी चन्द्रमुखी को कुछ पहचानते थे, सिर हिला कर कहा—नहीं-नहीं नोट वाली दूसरी होती हैं—तुम वैसी नहीं हो। सच बात कहो क्या है ?

चन्द्रमुखी ने कहा—सच बात तो यह है कि उनकी ओर कुछ म का खिंचाव हो रहा है।

चुन्नी ने विश्वास नहीं किया। हँस कर कहा—इतनी ही देर में।

इस बार चन्द्रमुखी भी हँस पड़ी। कहा—यह होने

दो। चित्त स्वस्थ होने पर एक बार और लिवा लाना, फिर एक बार देखूँगी। लिवा लाओगे न?

"कह नहीं सकता।"

"मेरे सिर की सौगन्ध है।"

"अच्छा, कोशिश करूँगा।"



दसवाँ परिच्छेद

पार्वती ने आकर देखा, उसके स्वामी की बहुत बड़ी हवेली है। नए साहिबी फ़ैशन की नहीं, पुराने ढङ्ग की है। सदर-महल, अन्दर-महल, पूजा का दालान, नाट्य-मन्दिर, अतिथिशाला, कचहरी-घर, तोशख़ाना और अनेक दास-दासियों को देख कर पार्वती अवाक् रह गई। उसने सुना था कि उसके स्वामी बड़े आदमी और ज़मीन्दार हैं। किन्तु इतना नहीं सोचा था। अभाव केवल आदमियों का था, अर्थात् आत्मीय कुटुम्ब-कुटुम्बिनी प्रायः कोई नहीं है। इतना बड़ा अन्तः-पुर (जनानख़ाना) जन-शून्य था। पार्वती नववधू है, किन्तु एकदम गृहिणी हो बैठी। परछन करके घर में लाने के लिए केवल एक बूढ़ी फूफी थी, इन्हें छोड़ सब दास-दासियों का दल था।

सन्ध्या के कुछ पहले एक सुन्दर सुकान्तिवान् बीस

वर्षीय नवयुवक ने प्रणाम करके पार्वती के निकट खड़े होकर कहा—माँ, मैं तुम्हारा बड़ा लड़का हूँ।

पार्वती ने घूँघट के भीतर से ही देखा, कुछ कहा नहीं। उसने फिर एक बार प्रणाम करके कहा—माँ, मैं तुम्हारा बड़ा लड़का हूँ, प्रणाम करता हूँ।

पार्वती ने अपने लम्बे घूँघट को सिर पर उठा, मृदु-कण्ठ से कहा—यहाँ आओ भाई, यहाँ आओ।

लड़के का नाम महेन्द्र है। वह कुछ देर तक पार्वती के मुख की ओर अवाक् होकर देखता रहा; फिर पास में बैठ कर विनीत स्वर से कहा—आज दो वर्ष हुए, मेरी माँ का स्वर्गवास हो गया। इन दो वर्षों का समय हम लोगों का बड़े दुःख और कष्ट से बीता है। आज तुम आई हो, आशीर्वाद दो कि अब हम लोग सुख से रहें।

पार्वती खुल कर सरल भाव से बातचीत करने लगी। क्योंकि एकबारगी गृहिणी होने से कितनी ही बातों के जानने और कितनी ही बार लोगों से बातचीत करने की ज़रूरत पड़ती है। किन्तु यह कहना कितने ही लोगों को कुछ अस्वाभाविक जँचेगा, पर जिन्होंने पार्वती के स्वभाव को अच्छी तरह से समझा है, वे देखेंगे कि अवस्था के इन अनेक परिवर्त्तनों ने उसकी उम्र की अपेक्षा उसे कहीं अधिक परिपक्व बना दिया है। इसके अतिरिक्त निरर्थक

लोक-लज्जा, अकारण जड़ता, सङ्कोच उसमें कभी नहीं था। उसने पूछा—हमारे और सब लड़के कहाँ हैं?

महेन्द्र ने ज़रा हँस कर कहा—तुम्हारी बड़ी लड़की—मेरी छोटी बहिन—अपनी ससुराल है, मैंने उसके पास चिट्ठी लिखी थी, पर यशोदा किसी कारण-वश नहीं आ सकी।

पार्वती ने दुखित होकर पूछा—आ नहीं सकी या स्वयं इच्छा से नहीं आई?

महेन्द्र ने लज्जित होकर कहा—ठीक नहीं जानता माँ!

किन्तु उसकी बात और मुख के भाव से पार्वती समझ गई कि यशोदा क्रोध के कारण नहीं आई है; कहा—और हमारा छोटा लड़का?

महेन्द्र ने कहा—वह बहुत जल्दी आएगा; कलकत्ते में है, परीक्षा देकर आएगा।

चौधरी महाशय स्वयं ही ज़मीन्दारी का काम देखते थे। इसे छोड़ वे नित्य शालिग्राम की बटिया की अपने हाथ से पूजा करते थे; व्रत-नियम, उपवास का यथा-नियम पालन करते थे; अतिथिशाला में जाके साधु-संन्यासियों की सेवा करते थे। इन सब कामों में उनका सुबह से लेकर रात के दस-ग्यारह बजे तक का समय लग जाता था। नवीन विवाह के करने से किसी नवीन आमोद-प्रमोद के चिन्ह उनमें नहीं दिखाई पड़ते थे, रात में किसी

दिन भीतर आते और किसी दिन नहीं आ सकते थे। आते भी तो बहुत मामूली बातचीत होती थी। चारपाई पर सोकर एक गावतकिया लगा कर आँख मूँदते-मूँदते यदि बहुत कहते तो केवल यही कि—देखो, तुम्हीं घर की मालकिन हो, सब अच्छी तरह से देख-सुन के और समझ-बूझ के काम करना !

पार्वती सिर हिला कर कहती—अच्छा !

भुवन बाबू कहते—और देखो, ये सब लड़की-लड़के... हाँ, ये सब तो तुम्हारे ही हैं।

स्वामी की लज्जा को देख कर पार्वती की आँख के कोने से हँसी फूट निकलती थी। वे भी थोड़ा हँस कर कहते—हाँ, और यह देखो, यह महेन्द्र तुम्हारा बड़ा लड़का है। अभी उस दिन बी० ए० पास हुआ है। इसके समान अच्छा लड़का—इसके समान मोहब्बती—अहा इस...... !

पार्वती हँसी दबा कर कहती—मैं जानती हूँ, यह मेरा बड़ा लड़का है !

"यह तुम क्यों न जानोगी। ऐसा लड़का कहीं भी नहीं देखने में आया। और मेरी यशोमती लड़की नहीं, एकदम लक्ष्मी की प्रतिमा है। वह अवश्य आएगी—क्या बूढ़े बाप को देखने नहीं आएगी ? उसके आने से......!"

पार्वती निकट आकर गञ्जे सिर पर अपने कमलवत

कोमल हाथ को रख कर मृदु स्वर से कहती—तुमको इसकी चिन्ता नहीं करनी होगी। यशोदा को बुलाने के लिए मैं आदमी भेजूँगी, नहीं तो महेन्द्र ख़ुद ही जायगा।

"जायगा! जायगा! अच्छा, बहुत दिन बिना देखे हुए। तुम आदमी भेजोगी?"

"ज़रूर भेजूँगी। मेरी लड़की है मैं बुलवाऊँगी नहीं?"

वृद्ध इस समय उत्साहित होकर उठ बैठते। परस्पर के सम्बन्ध को भूल कर पार्वती के सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद देते और कहते—तुम्हारा कल्याण हो। मैं आशीर्वाद देता हूँ—तुम सुखी हो, भगवान् तुम्हें दीर्घायु करें।

इसके बाद सहसा न जाने कौन-कौन सी बातें वृद्ध के मन में उठने लगती थीं। फिर चारपाई पर लेट कर आँखें मूँद कर मन ही मन कहते—आह! वह मुझे बहुत प्यार करती थी।

इसी समय कच्चे-पक्के मूँछों के पास से बह कर एक बूँद आँख का आँसू, तकिए पर गिर पड़ता। पार्वती पोंछ देती थी। कभी-कभी वे भीतर ही भीतर कहते—अहा! उन सभी लोगों के आ जाने से एक बार फिर घर-द्वार जगमगा उठेगा—अहा! पहले कैसी चहल-पहल रहती थी। लड़का-लड़की, घरनी—सब कोई थे—नित्य दुर्गोत्सव का आनन्द रहता। फिर एक दिन सबका अन्त हो गया।

लड़के कलकत्ते चले गए, यशो को उसके ससुर ले गए—फिर अन्धकार श्मशान...”

इसी समय फिर मूँछों के दोनों ओर से आँसू बह-बह कर तकिए को भिगोने लगे। पार्वती ने कातर होकर आँसू पोंछते-पोंछते कहने लगी—महेन्द्र का क्यों नहीं विवाह किया?

बूढ़े कहते—अहा, वह मेरे कैसे सुख का दिन होता! यही तो सोचता था। किन्तु उसके मन की बात कौन जाने—उसकी ज़िद्द को कौन तोड़े? किसी तरह से ब्याह नहीं किया। इसीलिए तो बुढ़ापे में—सारा घर भायँ-भायँ करता था, सारा घर दुःखित था, लक्ष्मी को छोड़ दरिद्र का वास होने लगा था; कोई घर में चिराग़ जलाने वाला नहीं रहा, यह सब देखा नहीं जाता था इसीलिए तो...”

यह बात सुन पार्वती बड़ी दुःखी होती। करुण-स्वर से, हँसी के मिस, सिर हिला कर कहती—तुम्हारे बूढ़े होने से मैं शीघ्र ही बूढ़ी हो जाऊँगी। स्त्रियों को बूढ़ी होने में क्या कुछ देरी लगती है?

भुवन चौधरी जी उठ कर बैठते; एक हाथ उसके चिबुक पर रख कर निःशब्द उसके मुख की ओर बहुत देर तक देखते रहते। जिस तरह कारीगर अपनी प्रतिमा को सजा कर, सिर में मुकुट पहना कर, दाहिने-बाँए घुमा-कर बहुत देर तक देखता रहता है—फिर थोड़ा गर्व और

अधिक स्नेह का भाव उत्पन्न होता है। ठीक उसी भाँति भुवन बाबू को भी होता है। किसी दिन उनके अस्फुट मुख से बाहर निकल पड़ता—आहा,—अच्छा नहीं किया।

"क्या अच्छा नहीं किया?"

"सोचता हूँ—यहाँ पर तुम्हारी शोभा नहीं है।"

पार्वती हँस कर कहती—ख़ूब शोभा है। हम लोगों की क्या शोभा-अशोभा?

वृद्ध फिर लेट कर मन ही मन कहते—मैं समझता हूँ—वह मैं समझता हूँ। तब तुम्हारा भला हो। भगवान् तुम्हें देखेंगे।

इसी भाँति एक महीना बीत गया। बीच में एक बार चक्रवर्ती महाशय कन्या को लेने आए थे—पार्वती अपनी ही इच्छा से नहीं गई। पिता से कहा—बाबू जी, बड़ी कच्ची गृहस्थी है, कुछ दिन बाद जाऊँगी।

वे भीतर ही भीतर हँसे और मन ही मन कहा—स्त्रियों की जाति ही ऐसी है।

वे चले गए, पार्वती ने महेन्द्र को बुला कर कहा—भाई एक बार मेरी बड़ी लड़की को बुला लाओ।

महेन्द्र इधर-उधर करने लगा। वह जानता था कि यशोदा किसी तरह नहीं आएगी। कहा—एक बार बाबू जी का जाना अच्छा होगा।

"छिः यह क्या अच्छा होगा? इससे तो अच्छा है कि हमी माँ-बेटे चल कर बुला लावें।

महेन्द्र ने आश्चर्य से कहा—क्या तुम जाओगी?

"क्या नुक़सान है? मुझको इस में लज्जा नहीं है; मेरे जाने से अगर यशोदा आवे, अगर उसका क्रोध दूर हो जाय, तो मेरा जाना कौन कठिन है?"

अस्तु, महेन्द्र दूसरे ही दिन यशोदा को लाने गया। उसने वहाँ जाकर कौन सा कौशल किया, यह मैं नहीं जानता, किन्तु चार ही दिन बाद यशोदा आ गई। उस दिन पार्वती सारी देह में विचित्र, नए और बहुत मूल्यवान् गहने पहने थी। कुछ ही दिन हुए इन्हें भुवन बाबू कलकत्ते से मँगवा दिया था—पार्वती आज वही सब गहने पहने हुए थी। रास्ते में आते समय यशोदा ने बहुतेरी क्रोध और अभिमान की बातों को मन ही मन दुहरा रही थी। नई बहू को देख कर वह एकदम अवाक् होगई। कोई भी विद्वेष की बात उसके मन में नहीं रही। केवल अस्फुट स्वर से कहा—यही!

पार्वती यशोदा का हाथ पकड़ कर घर में ले गई। पास में बैठ कर एक पङ्खा हाथ में लेकर कहा—यशोदा, माँ के ऊपर इतना क्रोध करना होता है?

यशोदा का मुख लज्जा से लाल हो उठा। पार्वती तब सारे गहने एक-एक करके यशोदा के अङ्ग में पहनाने लगी। यशोदा ने विस्मित होकर पूछा—यह क्या?

"कुछ नहीं, सिर्फ़ माँ की साध ।"

गहना पहनने से यशोदा का शरीर खिल उठा—एवं पहन चुकने पर उसके अधर पर हँसी की रेखा दिखाई दी। सारे शरीर में आभूषण पहना कर निराभरण पार्वती ने कहा—यशोदा, माँ के ऊपर भला क्रोध करना चाहिए?

"नहीं, नहीं—क्रोध कैसा? क्रोध किस पर?"

"सुनो यशोदा, यह तुम्हारे बाप का घर है; इतने बड़े मकान में कितने ही दास-दासियों की ज़रूरत है। मैं भी तो एक दासी ही हूँ। छिः, बेटी तुच्छ दासी के ऊपर इतना क्रोध करना क्या तुम्हें शोभा देता है?"

यशोदा अवस्था में बड़ी है, किन्तु बातचीत करने में छोटी है। वह विह्वल हो गई। पङ्खा हाँकते-हाँकते पार्वती ने फिर कहा—दुःखी की लड़की को तुम लोगों की दया से यहाँ पर थोड़ा सा स्थान मिला है; कितने ही दीन-दुःखी और अनाथों का तुम लोगों की दया से यहाँ नित्य ही प्रतिपालन होता है; मैं भी तो उन्हीं में से एक हूँ। जो आश्रित......

यशोदा सब तल्लीन होकर सुनती रही। अब एकाएक आत्म-विस्मरण कर पाँव के पास धप से गिर कर प्रणाम करके कहा—तुम्हारे पाँव लगती हूँ माँ।

दूसरे दिन महेन्द्र ने यशोदा को अकेले में बुला कर कहा—क्यों, क्रोध कम हुआ?

यशोदा ने भाई के पाँव पर हाथ रख कर चटपट कहा—भइया, क्रोध के वश—छिः छिः—कितनी ही बातें कही हैं, देखो वह सब प्रकट न होने पावें।

महेन्द्र हँसने लगा, यशोदा ने कहा—अच्छा भइया, क्या कोई सौतेली माँ इतना आदर-भाव रख सकती है?

दो दिन बाद यशोदा ने पिता से आकर आप ही कहा—बाबू जी, वहाँ पर चिट्ठी लिख दो कि मैं अभी और दो महीने यहीं पर रहूँगी।

भुवन बाबू ने कुछ आश्चर्य से कहा—क्यों बेटी?

यशोदा ने कहा—मेरी तबीयत कुछ अच्छी नहीं है, इसी से कुछ दिन छोटी माँ के पास रहूँगी।

आनन्द से वृद्ध की आँखों में आँसू उमड़ आए। सन्ध्या को पार्वती को बुला कर कहा—तुमने मुझे लज्जा से मुक्त कर दिया। जीती रहो, सुखी रहो।

पार्वती ने कहा—वह क्या?

"वह क्या, यह तुम्हें नहीं समझा सकूँगा। नारायण ने आज कितनी ही लज्जा से मेरा उद्धार कर दिया।"

सन्ध्या के अँधेरे में पार्वती ने नहीं देखा कि उसके स्वामी की दोनों आँखें जल से डबडबा आई हैं। और विनोदलाल—भुवन बाबू का छोटा लड़का—वह परीक्षा देकर घर आया, फिर अभी तक पढ़ने ही न गया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

दो तीन दिन देवदास ने पागलों की भाँति इधर-उधर घूम-घाम कर बिताए। धर्मदास कुछ कहने गया तो उस पर आँखें लाल-लाल कर धमका के भगा दिया। उनका विकृत भाव देख कर चुन्नीलाल को भी कुछ कहने का साहस न हुआ। धर्मदास ने रोकर कहा—चुन्नी बाबू, देवदास ऐसे क्यों होगए हैं?

चुन्नीलाल ने कहा—क्या हुआ धर्मदास?

एक अन्धे ने दूसरे अन्धे से रास्ता पूछा। दोनों में एक भी हृदय की बात नहीं जानते, आँख पोंछते-पोंछते धर्मदास ने कहा—चुन्नी बाबू, जिस तरह से हो सके, देवदास को उनकी माँ के पास पहुँचवाओ; अगर अब लिखें-पढ़ेंगे नहीं तो यहाँ रहने की ज़रूरत क्या?

बात बहुत सच है। चुन्नीलाल सोचने लगे। चार-

पाँच दिन बाद एक दिन सन्ध्या के ठीक उसी समय चुन्नी बाहर जा रहे थे। देवदास ने कहीं से आकर उनका हाथ थाम के कहा—चुन्नी बाबू वहीं जाते हो?

चुन्नी ने कुण्ठित होकर कहा—हाँ, नहीं कहो तो न जाऊँ।

देवदास ने कहा—नहीं, मैं जाने का मना नहीं करता हूँ; पर यह कहो—किस आशा से तुम वहाँ जाते हो?

आशा क्या है?—यों ही जी बहलाने को।

"जी बहलाने? मेरा तो जी नहीं बहला। मैं भी जी बहलाना चाहता हूँ।"

चुन्नी बाबू कुछ देर तक उनके मुख की ओर देखते रहे। सम्भवतः उनके मुख से उनके मन के भाव को जानने की चेष्टा करते थे। फिर कहा—देवदास, तुम्हें क्या हुआ है—साफ़-साफ़ कहो।

"कुछ भी नहीं हुआ है।"

"नहीं कहोगे?"

चुन्नीलाल ने बहुत देर बाद नीचा सिर किए हुए कहा—देवदास, मेरी एक बात रक्खोगे।

"क्या?"

"वहाँ पर तुमको एक बार और चलना होगा? मैंने वचन दिया है।"

"जहाँ उस दिन गया था?"

"हाँ।"

"छिः! वहाँ मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"जिससे अच्छा लगेगा, मैं वही करूँगा।"

देवदास अन्यमनस्क की भाँति कुछ देर तक चुप रहे; फिर कहा—अच्छा चलो, मैं चलूँगा।

* * *

अवनति की एक सीढ़ी नीचे उतार कर चुन्नीलाल न जाने कहाँ चले गए। अकेले देवदास ही चन्द्रमुखी के घर के नीचे के खण्ड में बैठ कर शराब पी रहे हैं। पास ही चन्द्रमुखी विषण्ण मुख से बैठी हुई देख रही है। उसने कहा—देवदास, अब मत पियो।

देवदास ने शराब का ग्लास नीचे रख कर भौं चढ़ा कर कहा—क्यों?

"अभी थोड़े ही दिन से शराब पीना शुरू किया है—इतनी नहीं बरदाश्त कर सकोगे।"

"बरदाश्त के लिए शराब नहीं पीता हूँ। यहाँ रहने के लिए शराब पीता हूँ।"

यह बात चन्द्रमुखी कई बार सुन चुकी है। दो-एक बार उसने सोचा कि कहीं दिवाल से टकरा कर वे लहू की नदी बहा कर मर न जायँ। देवदास को वह प्यार करती थी। देवदास ने शराब के ग्लास को ऊपर को लोका दिया। कोच के पाँव से लग कर वह चूर-चूर हो गया। फिर

तकिए के सहारे लेट कर लड़खड़ाती हुई ज़बान से कहा—मुझमें उठने का बल नहीं है, इसीसे यहाँ पड़ा रहता हूँ, ज्ञान नहीं है, इसीसे तुम्हारे मुख की ओर देख कर बात करता हूँ, चन्द...र...तब अज्ञानता नहीं रहती, थोड़ा सा ज्ञान रहता है। तुम्हें छू नहीं सकता—मुझे बड़ी घृणा होती है।

चन्द्रमुखी ने आँख पोंछ कर धीरे-धीरे कहा—देवदास, यहाँ कितने ही आदमी आते हैं, किन्तु वे लोग शराब छूते तक नहीं।

देवदास आँख निकाल कर उठ बैठे। कुछ झूमते हुए इधर-उधर हाथ फेंक कर कहा—छूते नहीं? मेरे पास बन्दूक़ होती तो गोली मार देता। वे लोग मुझसे भी अधिक पापिष्ट हैं—चन्द्रमुखी!

कुछ देर रुक कर सोचने लगे; फिर कहा—यदि कभी शराब का पीना छोड़ दूँ—यद्यपि छोड़ूँगा नहीं—तो फिर यहाँ कभी न आऊँगा। मुझे उपाय मालूम है; पर उन लोगों का क्या होगा?

थोड़ा रुक कर फिर कहने लगे—"बड़े दुःख से शराब को अपनाया है—मेरी विपद और दुःख की साथिन! अब तुझे कभी नहीं छोड़ सकता"—देवदास तकिए के ऊपर मुँह रगड़ने लगे। चन्द्रमुखी ने चटपट पास आकर मुख उठा लिया। देवदास ने भौं चढ़ा कर कहा—"छिः,

छूना नहीं, अभी मुझमें ज्ञान है। चन्द्रमुखी, तुम नहीं जानती—केवल मैं जानता हूँ कि मैं तुमसे कितनी घृणा करता हूँ। सर्वदा घृणा करूँगा—तब भी आऊँगा, तब भी बैठूँगा, तब भी बातें करूँगा। इसे छोड़ दूसरा उपाय नहीं है। इसे क्या तुम लोग कोई समझ सकती हो? हाः हाः लोग पाप अँधेरे में करते हैं, और मैं यहाँ मत-वाला हूँ—ऐसा उपयुक्त स्थान जगत् में और कहाँ है! और तुम लोग...

देवदास ने दृष्टि ठीक कर कुछ देर तक उसके विषण्ण मुख की ओर देख कर कहा—आहा! सहिष्णुता की प्रति-मूर्ति! लाञ्छना, भर्त्सना, अपमान, अत्याचार, उपद्रव इन सबको स्त्री सह सकती है—तुम्हीं इसका उदाहरण हो!"

फिर चित होकर लेट गए और धीरे-धीरे कहने लगे—चन्द्रमुखी कहती है कि वह मुझे बहुत प्यार करती है। मैं यह नहीं चाहता—नहीं चाहता—नहीं चाहता—लोग थिएटर करते हैं; मुख में चूना और कालिख पोतते हैं—भिक्षा माँगते हैं—राजा बनते हैं—रानी बनते हैं, प्यार करते हैं, कितनी ही प्यार की बातें करते हैं—कितना रोते हैं—मानो सब ठीक है, सत्य है। मेरी चन्द्र-मुखी थिएटर करती है, मैं देखता हूँ। किन्तु वह जो बहुत याद आती है, क्षण भर में सब हो गया। कहाँ वह

चली गई—और किस रास्ते से मैं आया हूँ। अब एक सर्व जीवन व्यापी मस्त अभिनय आरम्भ हुआ है एक घोर मतवाला—और यही एक—होने दो, हो—हर्ज क्या ! आशा नहीं है, वही भरोसा है—सुख भी नहीं, साध भी नहीं—वाह ! बहुत अच्छा !

इसके बाद देवदास करवट बदल कर न जाने क्यों बक-झक करने लगे। चन्द्रमुखी उसे नहीं समझ सकी। थोड़ी ही देर में देवदास सो गए। चन्द्रमुखी उनके पास आकर बैठी। आँचल भिगो कर मुख पोंछ दिया और भीगे हुए तकिए को बदल दिया। एक पङ्खा लेकर कुछ देर हवा की, बहुत देर तक नीचा सिर किए बैठी रही। तब रात को एक बज गए थे, वह दीपक बुझा कर द्वार बन्द कर दूसरे कमरे में चली गई।

बारहवाँ परिच्छेद

दोनों भाई—द्विजदास और देवदास—तथा गाँव के बहुत से लोग ज़मीन्दार मुखोपाध्याय की अन्त्येष्टि-क्रिया समाप्त कर घर पर लौट आए। द्विजदास चिल्ला-चिल्ला कर रोते-रोते पागल की भाँति हो गए, गाँव के पाँच-पाँच, छः-छः आदमी उनको पकड़ कर रख नहीं सकते थे और देवदास शान्त भाव से खम्भे के पास बैठे थे। मुख में एक शब्द नहीं था, आँखों में एक विन्दु जल नहीं था, कोई उनको पकड़ने भी नहीं जाता था, कोई सान्त्वना भी नहीं देता था। केवल मधुसूदन घोष ने एक बार पास में आकर कहा—भाई, यह सब ईश्वर के अधीन की बात है। इसमें...... ।

देवदास ने, द्विजदास की ओर हाथ से दिखा कर कहा—वहाँ...... ।

घोष महाशय ने अप्रतिभ होकर कहा—हाँ-हाँ, उनको तो बहुत शोक......।

इत्यादि कहते-कहते चले गए। और कोई पास नहीं आया। दोपहर बीतने पर देवदास मूर्च्छिता माता के पाँव के पास जाकर बैठे। वहाँ पर बहुत सी स्त्रियाँ उनको घेर कर बैठी था। पार्वती की दादी भी उन्हीं में बैठी थीं। टूटे-फूटे स्वर से शोकार्त विधवा माता से कहा—"बहू, देखो देवदास आया है।" देवदास ने बुलाया—"माँ !"

उन्होंने केवल एक बार देख कर कहा—"देवदास।" फिर डबडबाई हुई आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। स्त्रियाँ भी चिल्ला उठीं। देवदास कुछ देर तक माता के चरणों में अपना मुख ढँके रहे, फिर उठ कर चले गए—गए पिता के सोने के कमरे में। आँखों में जल नहीं था। मुख गम्भीर तथा शान्त था। लाल-लाल आँखों को ऊपर चढ़ाए हुए जाकर भूमि पर बैठ गए। उस मूर्ति को यदि कोई देखता तो सम्भवतः भयभीत हो जाता। दोनों कनपटियाँ फूली हुई थीं। बड़े-बड़े रूखे केश ऊपर की ओर खड़े थे। तपाए हुए सोने के समान शरीर का रङ्ग काला पड़ गया। कलकत्ते के जघन्य अत्याचार में रात का दीर्घ जागरण हुआ था—और उस पर पिता की मृत्यु हुई। एक वर्ष पहले अगर उनको कोई देखे होता, तो सम्भवतः एकाएक उनको पहचान न सकता। कुछ देर के बाद

पार्वती की माता उन्हें ढूँढती हुई दरवाज़ा ठेल कर भीतर आई और पुकारा—देवदास !

"क्या है छोटी चाची ?"

"ऐसा करने से तो नहीं चलेगा ।"

देवदास ने उनके मुँह की ओर देख कर कहा—क्या करता हूँ चाची ?

चाची सब समझतीं थीं, किन्तु कुछ कह नहीं सकीं। देवदास के सिर पर हाथ फेरते-फेरते कहा—देवता—मेरा !

"क्या चाची !"

"देवता—"

इस बार देवदास ने उनकी गोद में अपना मुख छिपा लिया, आँखों से दो बूँद गरम-गरम आँसू गिर पड़े ।

शोकार्त परिवार का दिन भी किसी भाँति बीता। नियमित रूप से प्रभात हुआ, रोना-धोना बहुत कुछ कम हो गया। द्विजदास धीरे-धीरे अपने आपे में आए। उनकी माता भी कुछ सँभल कर बैठीं। आँख पोंछते-पोंछते आवश्यक काम करने लगीं। दो दिन बाद द्विजदास ने देवदास को बुला कर कहा—देवदास, पिता के श्राद्ध-कर्म के लिए कितना रुपया ख़र्च करना उचित है ?

देवदास ने भाई के मुख की ओर देख कर कहा—जो आप उचित समझें, करें।

"नहीं भाई, केवल मेरे ही उचित समझने से काम नहीं चलेगा, अब तुम भी बड़े हुए, तुम्हारी सम्मति भी लेना आवश्यक है।"

देवदास ने पूछा—कितना नगद रुपया है?

"बाबू जी की तहवील में डेढ़ लाख रुपया जमा है। मेरी सम्मति से दस हज़ार रुपया ख़र्च करना काफ़ी होगा, क्या कहते हो?"

मुझे कितना मिलेगा?"

द्विजदास ने कुछ इधर-उधर करके कहा—तुम्हें भी आधा मिलेगा, दस हज़ार ख़र्च होने से ७० हज़ार तुम्हें और ७० हज़ार मुझे मिलेगा।"

"माँ को क्या मिलेगा?"

"माँ नगद रुपया लेकर क्या करेंगी। वे तो घर की मालकिन ही हैं। हम लोग उनका ख़र्च सँभालेंगे।"

देवदास ने कुछ सोच कर कहा—मेरी सम्मति है कि आपके भाग से ५ हज़ार रुपया ख़र्च हो और मेरे भाग से २५ हज़ार रुपया ख़र्च हो, बाक़ी २५ हज़ार रुपया माँ के नाम जमा रहेगा। आपकी क्या सम्मति है?

पहले द्विजदास कुछ लज्जित हुए। फिर कहा—"अच्छी बात है। किन्तु यह तो जानते ही हो कि मेरे स्त्री-पुत्र और कन्या हैं; उनके यज्ञोपवीत, विवाह आदि में बहुत ख़र्च पड़ेगा। इसलिए यही सम्मति ठीक है।" फिर कुछ

ठहर कर कहा—"तो क्या ज़रा सी इसकी लिखा-पढ़ी कर दोगे ?"

"लिखने-पढ़ने का क्या काम है ? यह काम अच्छा नहीं मालूम होगा। मेरी इच्छा है कि रुपए-पैसे की बात इस समय छिपी-छिपाई रहे।"

"तो अच्छी बात है ; किन्तु क्या जानते हो भाई..."

"अच्छा मैं लिखे देता हूँ।" उसी दिन देवदास ने लिख-पढ़ दिया।

दूसरे दिन दोपहर के समय देवदास सीढ़ी से नीचे उतर रहे थे। बीच में पार्वती को देख कर रुक गए! पार्वती ने मुख की ओर देखा—देख कर पहचानते हुए उसे क्लेश हो रहा था। देवदास ने गम्भीर और शान्त मुख से आकर कहा—कब आई पार्वती ?

वही कण्ठ-स्वर आज तीन वर्ष बाद सुना। सिर नीचा किए हुए पार्वती ने कहा—आज सुबह आई।

"बहुत दिन से भेंट नहीं हुई। अच्छी तरह से तो रही ?

पार्वती सिर नीचा किए रही।

"चौधरी महाशय अच्छी तरह से हैं ? लड़के-लड़की सब अच्छी तरह से हैं ?"

"सब अच्छी तरह से हैं।" पार्वती ने एक बार मुख की ओर देखा ; पर एक भी बात पूछ नहीं सकी। वे कैसे हैं, क्या करते हैं, इत्यादि वह कुछ भी पूछ नहीं सकी।

देवदास ने पूछा—अभी तो यहाँ कुछ दिन रहना होगा?

"हाँ।"

"तब फिर क्या"—कह कर देवदास चले गए।

श्राद्ध समाप्त हो गया। उसका वर्णन करने में बहुत कुछ लिखना पड़ेगा, इसीसे उसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। श्राद्ध के दूसरे दिन पार्वती ने धर्मदास को अकेले में बुला कर उसके हाथ में एक सोने का हार देकर कहा—धर्म, अपनी कन्या को यह पहना देना।

धर्मदास ने मुँह की ओर देख कर आर्द्र नेत्र और करुण कण्ठ-स्वर से कहा—आहा! तुमको बहुत दिन से नहीं देखा, सब कुशल तो है?

"सब कुशल है। तुम्हारी लड़की-लड़के तो अच्छे हैं?"

"हाँ पत्तो, सब अच्छे हैं।"

"तुम अच्छे हो?"

इस बार दीर्घ निःश्वास खींच कर धर्मदास ने कहा—"क्या अच्छा हूँ? अब यह जीवन भार-सा मालूम होता है—मालिक ही चले गए......।" धर्मदास शोक के आवेग में कुछ और कहना चाहता था; किन्तु पार्वती ने बाधा दी। इन सब बातों के सुनने के लिए उसने हार नहीं दिया था।

पार्वती ने कहा—यह क्यों धर्मदास, तुम्हारे जाने से देव दादा को कौन देखेगा ?

धर्मदास ने माथा ठोंक कर कहा—जब छोटे लड़के थे, तब देखने की ज़रूरत थी। अब नहीं देखने से ही अच्छा है।

पार्वती ने और पास आकर कहा—धर्म, एक बात सच-सच बताओगे ?

"क्यों नहीं बताऊँगा, पत्तो !"

"तब सच-सच कहो कि देवदास इस समय अभी क्या कर रहे हैं ?"

"मेरा सिर कर रहे हैं, और क्या करेंगे ?"

"धर्मदास, साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते ?"

धर्मदास ने फिर सिर पीट कर कहा—साफ़-साफ़ क्या कहूँ ! भला यह कुछ कहने की बात है। अब मालिक नहीं हैं। देवदास के हाथ अगाध रुपया लगा है, अब क्या रक्षा हो सकेगी ?

पार्वती का मुख एकबारगी मलिन पड़ गया। उसने आभास और सङ्केत से कुछ सुना था। दुःखित होकर पूछा—"क्या कहते हो धर्मदास ?" वह मनोरमा के पत्रों से जब कोई समाचार पाती थी तो उस पर विश्वास नहीं करती थी। धर्मदास सिर नीचा करके कहने लगा—खाना नहीं, पीना नहीं, सोना नहीं, केवल बोतल पर

बोतल शराब ; तीन-तीन, चार-चार दिन तक न जाने कहाँ रहते हैं, कुछ पता नहीं। कितने ही रुपए फूँक दिए। सुनता हूँ, कई हज़ार रुपए का गहना बनवा दिया है।

पार्वती सिर से पैर तक सिहर उठी—"धर्मदास, यह क्या कहते हो ? क्या यह सब सच है ?"

धर्मदास ने अपने मन में ही कहा—"शायद तुम्हारी बात सुनें; तुम एक बार मना कर देखो। कैसा शरीर था, कैसा हो गया—ऐसे असंयम और अत्याचार से कै दिन जिएँगे ? किससे यह बात कहूँ ? माँ, बाप, भाई से ऐसी बातें नहीं कही जातीं।" धर्मदास ने फिर सिर ठोक कर कहा—इच्छा होता है, ज़हर खाकर मर जाऊँ पत्ती, अब आगे जीने की साध नहीं है।

पार्वती उठ कर चली गई। नारायण बाबू के मरने का समाचार पाकर वह चली आई थी। सोचा था, इस विपत्ति के समय देवदास के पास जाना आवश्यक है। किन्तु उसके परम प्रिय देवदास की यह अवस्था है ! कितनी ही बातें उसके मन में उठने लगीं, जिनका अन्त नहीं। जितना धिक्कार उसने देवदास को दिया, उसका हज़ार गुना अपने को दिया। हज़ार बार उसके मन में उठा कि क्या उसके होने पर वह ऐसे बिगड़ सकते ? पहले ही उसने अपने पाँव में आप कुठार मारा, किन्तु वह कुठार उसके सिर पर गिरा। उसके देव दादा ऐसे हो

रहे हैं—इस प्रकार नष्ट हो रहे हैं, और वह दूसरे की गृहस्थी के बनाने में लगी हुई है, दूसरे को वह अपना समझ कर नित्य अन्न बाँट रही है, और उसके सर्वस्व—आज भूखों मर रहे हैं! पार्वती ने प्रतिज्ञा की कि आज वह देवदास के पाँव में माथा पटक कर प्राण-त्याग कर देगी।

अभी भी सन्ध्या होने में कुछ देर है। पार्वती ने देवदास के कमरे में प्रवेश किया। देवदास चारपाई पर बैठे हुए हिसाब देख रहे थे, इधर देखा—पार्वती धीरे-धीरे किवाड़ बन्द कर फ़र्श पर बैठ गई। देवदास ने सिर उठा कर हँस कर उसकी ओर देखा, उनका मुख विषण्ण, किन्तु शान्त था। हठात् कौतुक से पूछा—यदि मैं अपवाद उठाऊँ तो?

पार्वती ने अपनी सलज्ज, श्याम कमलवत् दोनों आँखों से एक बार उनकी ओर देखा, फिर नज़र नीची कर ली। देवदास की इस बात ने भली-भाँति जना दिया कि वह बात उसके हृदय में आजन्म के लिए अङ्कित हो गई है। वह देवदास से कितनी ही बातें कहने के लिए आई थी, किन्तु सब भूल गई, एक भी बात न कह सकी। देवदास ने फिर हँस कर कहा—"समझता हूँ, समझता हूँ! लज्जा लगती है न?" तब भी पार्वती कोई बात न कह सकी। देवदास ने कहा—इसमें लज्जा की

क्या बात है ? हम-तुम दोनों ही लड़कपन में बराबर एक साथ उठते-बैठते और खेलते थे। इसी बीच में एक गड़बड़ी हो गई। क्रोध करके जो तुम्हारे जी में आया कहा, और मैंने भी तुम्हारे सिर में यह दाग़ दे दिया। कैसा हुआ ?

देवदास की बात में श्लेष व विद्रूप का लेश भी नहीं था ; हँसते ही हँसते पहले की बीती दुःख की कहानी कह सुनाई। पार्वती का हृदय भी सुन कर फटने लगा। मुँह में आँचल देकर एक गहरी साँस खींच कर मन ही मन कहा—देव दादा, यह दाग़ ही मेरे ढाढ़स का कारण है, एकमात्र यही मेरा साथी है। तुम मुझे प्यार करते थे, इसी से दया करके, हम लोगों के बाल्य-इतिहास को इस रूप में इस ललाट में अङ्कित कर दिया है। इससे मुझे लज्जा नहीं, कलङ्क नहीं, यह मेरे गौरव का चिन्ह है।

"पत्तो !"

मुख से आँचल न हटा कर ही पार्वती ने कहा—क्या ?

"तुम्हारे ऊपर मुझे बड़ा क्रोध आता है।"

इस बार देवदास का कण्ठ-स्वर विकृत हो गया—बाबू जी नहीं हैं, आज मेरे विपत्ति का समय है, किन्तु तुम्हारे रहने से कोई चिन्ता न रहती ! बड़ी भाभी को जानती ही हो, भाई साहब का स्वभाव भी तुमसे कुछ छिपा नहीं है ; और तुम्हीं सोचो, माँ को इस समय लेकर मैं क्या करूँ ; और मेरा कुछ ठिकाना ही नहीं कि क्या

होगा ? तुम्हारे रहने से मैं सब कुछ तुम्हारे हाथ में सौंप कर निश्चिन्त हो जाता—क्यों पत्तो ?

पार्वती फफा कर रो पड़ी। देवदास ने कहा—रोती हो क्या ? अब और कुछ नहीं कहूँगा ?

पार्वती ने आँख पोंछते-पोंछते कहा—नहीं, कहो !

देवदास ने कण्ठ-स्वर को ठीक करके कहा—पत्तो, अब तो तुम ख़ूब पक्की घरनी हो गई हो न ?

घूँघट के भीतर ही भीतर होंठ चबा कर, मन ही मन उसने कहा—घरनो क्या हुई हूँ ! क्या सेमल का फूल कभी देव-सेवा में लगता है ?

देवदास ने हँसते-हँसते कहा—बड़ी हँसी आती है ! तुम कितनी छोटी थीं और अब कितनी बड़ी हो गईं। बड़ा मकान है, बड़ी ज़मींदारी है, बड़े-बड़े लड़की-लड़के हैं—और सबसे बड़े चौधरी जी—क्यों पत्तो ?

चौधरी जी पार्वती के लिए बड़ो हँसी की चीज़ हैं; उनके ध्यान-मात्र आने से उसे हँसी आ जाती है। इतने कष्ट में भी इसीसे उसे हसी आ गई। देवदास ने बनावटी गम्भीरता से कहा—क्या एक उपकार कर सकती हो ?

पार्वती ने मुख उठा कर कहा—क्या ?

"तुम्हारे गाँव में कोई अच्छी लड़की मिल सकती है ?"

पार्वती ने खाँस कर कहा—अच्छी लड़की ! क्या करोगे ?

"मिलने पर विवाह करूँगा। एक बार गृहस्थ बनने की साध होती है।"

पार्वती ने गम्भीरतापूर्वक पूछा—ख़ूब सुन्दरी न?

"हाँ, तुम्हारी तरह।"

"और ख़ूब शान्त?"

"नहीं, ख़ूब शान्त से काम नहीं है; वरन् कुछ दुष्ट हो, जिसमें तुम्हारी तरह मुझसे झगड़ा कर सके।"

पार्वती ने मन ही मन कहा—"यह तो कोई नहीं कर सकेगी देव दादा, क्योंकि इसके लिए मेरे समान प्रेम चाहिए।" प्रकट में कहा—"मैं अभागिन क्या हूँ, मेरे ऐसी न जाने कितनी हज़ार तुम्हारे पाँव की धूलि लेकर अपने को धन्य मानेंगी?"

देवदास ने मज़ाक़ से हँस कर कहा—क्या अभी एक ऐसी ला सकती हो?

"देव दादा, क्या सचमुच विवाह करोगे?"

"वैसा ही, जैसा मैंने बतलाया है।"

केवल यही खोल कर नहीं कहा कि उसे छोड़ इस संसार में उसके जीवन की कोई सहवासिनी नहीं हो सकती।

"देवदास, एक बात बताओगे!"

"क्या?"

पार्वती ने अपने को बहुत सँभाल कर कहा—तुमने शराब पीना कैसे सीखा?

देवदास ने हँस कर कहा—पीना भी क्या कहीं सीखना होता है?

"यह नहीं तो अभ्यास कैसे किया?"

"किसने कहा—धर्मदास ने?"

"कोई भी कहे; क्या यह बात सच है?"

देवदास ने छिपाया नहीं, कहा—कुछ है?

पार्वती ने कुछ देर स्तब्ध रहने के बाद पूछा—और कितने हज़ार रुपए का गहना गढ़ा दिया है?

देवदास ने गम्भीरता से कहा—दिया नहीं है; गढ़ा कर रक्खा है। तुम लोगी?

पार्वती ने हाथ फैला कर कहा—दो, यह देखो, मुझ पर एक भी गहना नहीं है।

"चौधरी जी ने तुम्हें नहीं दिया?"

"दिया था; पर मैंने सब उनकी बड़ी लड़की को दे दिया।"

"जान पड़ता है अब तुम्हें ज़रूरत नहीं है।"

पार्वती ने सिर हिला कर मुख नीचा कर लिया। देवदास की आँखों में आँसू भर आया। देवदास ने मन ही मन सोचा कि साधारण दुःख से स्त्रियाँ अपने गहने खोल कर नहीं देतीं। किन्तु आँख के निकलते हुए आँसुओं को रोक कर धीरे-धीरे कहा—झूठी बात है; किसी स्त्री से मैंने प्रेम नहीं किया। किसी को मैंने गहना नहीं दिया।

पार्वती ने दीर्घ निःश्वास फेंक कर मन ही मन कहा—ऐसा ही मुझे भी विश्वास है।

कुछ देर तक दोनों ही चुप रहे। फिर पार्वती ने कहा—किन्तु प्रतिज्ञा करो कि अब शराब नहीं पिऊँगा।

"यह नहीं कर सकता। तुम क्या प्रतिज्ञा कर सकती हो कि मुझे भुला दोगी ?"

पार्वती ने कुछ नहीं कहा। इसी समय बाहर से सन्ध्या की शङ्ख-ध्वनि हुई। देवदास ने खिड़की से बाहर देख कर कहा—सन्ध्या हो गई, अब घर जाओ पत्तो!

"मैं नहीं जाऊँगी, तुम प्रतिज्ञा करो।"

"क्यों, मैं नहीं कर सकता।"

"क्यों नहीं कर सकते ?"

"क्या सभी सब कामों को कर सकते हैं ?"

"इच्छा करने से अवश्य कर सकते हैं।"

"तुम मेरे साथ आज रात में भाग सकती हो ?"

पार्वती का हृदय-स्पन्दन सहसा बन्द हो गया। अनजान में धीरे से निकल गया—यह क्या हो सकता है ?

देवदास ने ज़रा चारपाई के ऊपर बैठ कर कहा—पार्वती, किवाड़ खोल दो।

देवदास खड़े होकर घोर-भाव से कहने लगे—पत्तो, क्या ज़ोर देकर प्रतिज्ञा कराना अच्छा है ? उससे क्या

कोई विशेष लाभ है ? आज की की हुई प्रतिज्ञा कल शायद न रहेगी। क्यों मुझे झूठा बनाती हो ?

और भी कुछ क्षण योंही निःशब्द बीत गया। इसी समय न जाने किस घर में टन-टन करके नौ बजा। देवदास व्यस्त भाव से कहने लगे—पत्तो, द्वार खोल दो।

पार्वती ने कुछ नहीं कहा।

"जा पत्तो !"

"मैं किसी तरह नहीं जाऊँगी।"—कह कर पार्वती अकस्मात् पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बहुत देर तक फूट-फूट कर रोती रही। कमरे के भीतर इस समय गाढ़ा अन्धकार था—कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। देवदास ने केवल अनुमान से समझा कि पार्वती ज़मीन में पड़ी रो रही है, धीरे-धीरे बुलाया—पत्तो !

पार्वता ने रोते-रोते उत्तर दिया—"देव दादा, मुझे बहुत कष्ट हो रहा है।" देवदास पास खिसक आए। उनकी आँखों में भी जल भरा था, किन्तु स्वर विकृत नहीं हुआ। कहा—यह क्या, मैं नहीं जानता हूँ पत्तो !

"देव दादा, मैं मर भी जाऊँगी; किन्तु कभी तुम्हारी सेवा नहीं कर सकी—यह मेरे आजन्म की साध है।"

अँधेरे में आँख पोंछते-पोंछते देवदास ने कहा—वह भी समय आएगा।

"तब मेरे साथ चलो। यहाँ पर तुम्हें कोई देखने वाला नहीं है।"

"तुम्हारे मकान पर चलूँगा तो ख़ूब सेवा करोगी?"

"यह मेरे बचपन की ही साध है। हे स्वर्ग के देवता! मेरी इस साध को पूर्ण करो। इसके बाद यदि मर भी जाऊँ तो भी दुःख नहीं है।"

इस बार देवदास की आँखों में पानी भर आया। पार्वती ने फिर कहा—देवदास, मेरे यहाँ चलो।

देवदास ने आँखें पोंछ कर कहा—अच्छा चलूँगा।

"मेरे सिर पर हाथ रख कर कहो कि चलोगे।"

देवदास ने अनुमान से पार्वती का पाँव छूकर कहा—यह बात मैं कभी नहीं भूलूँगा। अगर मेरे जाने से ही तुम्हारा दुःख दूर हो, तो मैं अवश्य आऊँगा। मरने के पहले भी मुझे यह बात याद रहेगी।

तेरहवाँ परिच्छेद

पिता की मृत्यु के बाद धीरे-धीरे छः महीने बीत गए। देवदास घर से एकदम ऊब गए। सुख नहीं, शान्ति नहीं, उस पर एक ही तरह की जीवनचर्या से मन बिलकुल विरक्त हो चला। तिस पर पार्वती की चिन्ता से चित्त और भी अव्यवस्थित हो रहा था ; फिर आजकल तो उसके एक-एक काम, एक-एक हाव-भाव के चित्र हर समय आँखों के सामने नाचा करते थे। उस पर भाई-भौजाई के उदासीन व्यवहारों ने देवदास के सन्ताप को और भी दूना कर दिया था।

माता की अवस्था भी देवदास की ही तरह थी। स्वामी की मृत्यु के साथ ही साथ उनके सारे सुखों का लोप हो गया। पराधीन होकर इस मकान में रहना उनके लिए भी धीरे-धीरे असह्य होने लगा। आज कई दिनों से वे काशी-वास का विचार कर रही हैं। केवल देवदास

के अविवाहित होने के कारण वे अभी नहीं जा सकती हैं। जब-तब यही कहती हैं कि—"देवदास, अब तुम विवाह कर लो, मेरी साध पूरी हो जाय।" किन्तु यह कब सम्भव था। एक तो पिता की अभी वर्षी नहीं हुई, दूसरे अभी कोई इच्छानुकूल कन्या नहीं मिली। इसी से माता आजकल कभी-कभी दुःखित हो जाया करती हैं कि यदि उस समय पार्वती का विवाह हो गया होता, तो अच्छा होता। एक दिन उन्होंने देवदास को बुला कर कहा—"अब मैं यहाँ नहीं रहना चाहती, कुछ दिनों के लिए काशी जाके रहने की इच्छा है।" देवदास की भी यही इच्छा थी, कहा—"मेरी भी यही सम्मति है। छः महीने के बाद लौट आना।"

"ऐसा ही करो। फिर लौट के आने पर उनकी क्रिया-कर्म हो जाने के बाद तुम्हारा विवाह कर, तुम्हें गृहस्थ बना देख, मैं फिर जाके काशीवास करूँगी।"

देवदास सहमत होकर माता को कुछ दिनों के लिए काशी पहुँचा कर कलकत्ते चले गए। कलकत्ते आकर देवदास ने तीन-चार दिनों तक चुन्नीलाल को ढूँढ़ा। वे नहीं मिले, उस मेस को छोड़ कर किसी दूसरी जगह चले गए थे। एक दिन सन्ध्या के समय देवदास को चन्द्रमुखी की बात याद आई। एक बार देख आना अच्छा होगा। इतने दिनों तक कुछ भी स्मरण नहीं आया था।

इससे कुछ लज्जा सी मालूम हुई। एक किराए की गाड़ी करके चले। कुछ सन्ध्या हो जाने पर चन्द्रमुखी के मकान के सामने गाड़ी आ खड़ी हुई। बहुत देर तक बुलाने-चिल्लाने के बाद भीतर से स्त्री के कण्ठ-स्वर में उत्तर मिला—"यहाँ नहीं है।" सामने एक बिजली की रोशनी का खम्भा खड़ा था, देवदास ने उसके पास से होकर कहा—"कह सकती हो, वह कहाँ गई है?" खिड़की खोल कर उसने कुछ क्षण देखने के बाद कहा—क्या आप देवदास हैं?

"हाँ।"

"खड़े रहिए—दरवाज़ा खोलती हूँ।" दरवाज़ा खोल कर उसने कहा—"आइए!" कण्ठ-स्वर कुछ परिचित-सा जान पड़ा, किन्तु फिर भी पहचान नहीं सके। थोड़ा अन्धकार भी हो चला था। सन्देह से कहा—चन्द्रमुखी कहाँ रहती है, कुछ कह सकती हो?

स्त्री ने मीठी हँसी-हँस कर कहा—हाँ, तुम ऊपर चलो। इस बार देवदास ने पहचान लिया—हैं! तुम्हीं हो?

"हाँ, मैं ही हूँ। देवदास, मुझे एकदम भूल गए।"

ऊपर जाकर देवदास ने देखा, चन्द्रमुखी एक काले किनारे की मैली धोती पहने है, हाथ में केवल दो कड़ों को छोड़, शरीर पर और कोई आभूषण नहीं है, सिर के

केश इधर-उधर बिखरे हुए हैं ; विस्मित हो मिलता था,
पूछा—"तुम्हीं ?" अच्छी तरह से देखा ; चन्
की अपेक्षा बहुत दुबली हो गई है। सब

पूछा—तुम क्या बीमार थीं ?

"कोई शारीरिक बीमारी नहीं थी, तुम अच्छी त
से बैठो।"

देवदास ने चारपाई पर बैठ कर देखा, घर में पहले की अपेक्षा आकाश-ज़मीन का अन्तर हो गया है। गृह-स्वामिनी की भाँति उसकी दुर्दशा की भी सीमा नहीं थी। एक भी सामान नहीं था, आलमारी, टेबिल, कुरसी आदि सबके स्थान ख़ाली पड़े हैं। केवल एक शय्या पड़ी थी ; चादर मैली थी, दीवाल पर से चित्र हटा दिए गए थे। लोहे की काँटियाँ अब भी गड़ी हुई थीं। दो-एक लाल फ़ीते भी इधर-उधर लटके हुए थे। पहले की वह घड़ी भी ब्राकेट पर रक्खी हुई थी, किन्तु निःशब्द थी। आस-पास मकड़ों ने अपनी इच्छानुकूल जाला बुन रक्खा था। एक कोने में एक तेल का दिया धीमी-धीमी रोशनी फैला रहा था, उसी के सहारे से देवदास ने घर की इस नई सजावट को देखा। कुछ विस्मित और कुछ क्षुब्ध होकर कहा—"चन्द्र ! ऐसी दुर्दशा कैसे हुई ?" चन्द्रमुखी ने मलिन हँसी हँस कर कहा—"दुर्दशा ! तुमसे किसने कहा ? मेरा तो भाग्य प्रसन्न हुआ है।"

इससे कुछ लज् समझ नहीं सके, कहा—तुम्हारे सब गहने

करके चले "

के सामने च डाले।"

चिह्न "माल-असबाब?"

गि "वह भी बेच डाला।"

"घर की तसवीरें भी बेच डालीं?

इस बार चन्द्रमुखी ने हँस कर सामने के एक मकान को दिखा कर कहा—उस मकान के मालिक के हाथ बेच दीं।

देवदास ने कुछ देर तक मुँह की ओर देख कर कहा—चुन्नी बाबू कहाँ हैं?

"नहीं कह सकती। दो महीने हुए, लड़-झगड़ कर चले गए, फिर तब से नहीं आए।"

देवदास को अब और आश्चर्य हुआ। पूछा—झगड़ा क्यों हुआ?

चन्द्रमुखी ने कहा—क्या झगड़ा नहीं होता?

"होता है, पर क्यों?"

"दलाली करने आए थे, इसी से हटा दिया।"

"किसकी दलाली?"

चन्द्रमुखी ने हँस कर कहा—"पट्टू की।" फिर कहा—"तुम क्या नहीं समझते? एक बड़े आदमी को पकड़ लाए थे। महीने में दो सौ रुपए, एक सेट गहना

और दरवाज़े के सामने रहने को एक सिपाही मिलता था, समझे!"

देवदास ने सब समझ के हँस कर कहा—वह सब एक भी तो नहीं देखता हूँ।

"रहते तब न देखते? मैंने उन लोगों को हटा दिया।"

"उन लोगों का अपराध?"

"उन लोगों का अपराध कुछ ज़्यादा नहीं था, पर मुझे अच्छा नहीं लगा।"

देवदास ने बहुत सोच कर कहा—उसी दिन से यहाँ और कोई नहीं आया?

"नहीं। उस दिन से क्यों? तुम्हारे जाने के बाद से ही यहाँ कोई नहीं आता। सिर्फ़ बीच-बीच में चुन्नीलाल आ जाते थे, किन्तु दो मास से वे भी नहीं आते।"

देवदास बिछौने के ऊपर लेट गए। दूसरी ओर देखने लगे; बहुत देर तक चुप रहने के बाद धीरे से कहा—चन्द्रमुखी, तब दुकानदारी सब उठा दी?

"हाँ, दिवाला निकाल दिया।"

देवदास ने इस बात का उत्तर न देकर कहा—लेकिन रोटी-पानी कैसे चलेगा?

"इसीलिए तो जो कुछ गहना-पत्तर था, बेच दिया।"

"उसमें अब कितना बचा है?"

"ज़्यादा नहीं, कोई आठ-नौ सौ रुपए होंगे। उन्हें एक

मोदी के पास रख दिए हैं—वह मुझे महीने में २०) देता है।"

"२०) से तो पहले तुम्हारा नहीं चलता था !"

"नहीं, आज भी अच्छी तरह से नहीं चलता है। तीन महीने से मकान का किराया बाक़ी है; इसी से इच्छा होती है कि इन दोनों कड़ों को बेच कर, सब पटा कर और कहीं चली जाऊँ।"

"कहाँ जाओगी ?"

"यह अभी निश्चय नहीं किया है। किसी सस्ते देश—गवँई-गाँव में जाऊँगी जिसमें २०) महीने में निर्वाह हो जाय।"

"इतने दिन से क्यों नहीं गईं ? अगर सचमुच ही तुम्हारा और कोई मतलब नहीं था तो फिर इतने दिन रह कर व्यर्थ क़र्ज़ क्यों बढ़ाया ?"

चन्द्रमुखी सिर नीचा करके कुछ सोचने लगी। उसके जीवन भर में बातचीत करने में लज्जा करने का यह पहला अवसर है। देवदास ने पूछा—चुप क्यों हो ?"

चन्द्रमुखी ने शय्या के एक ओर सङ्कुचित भाव से बैठ कर धीरे-धीरे कहा—क्रोध मत करना; जाने के पहले सोचा था कि तुमसे भेंट कर लेना अच्छा होगा। आशा करती थी कि एक बार तुम आओगे। आज तुम

आए ही, अब कल ही जाने का उद्योग करूँगी। पर कहाँ जाऊँ, कुछ कह सकते हो?

देवदास विस्मित होकर उठ बैठे; कहा—सिर्फ़ मुझे देखने की आशा से रुकी थी। लेकिन क्यों?

"एक ख़्याल। तुम मुझसे बहुत घृणा करते थे। इतनी घृणा किसी ने मुझसे कभी नहीं की, शायद इसीलिए। तुम्हें अब याद है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकती, पर मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि जिस दिन तुम पहले-पहल यहाँ पर आए थे, उसी दिन मेरी नज़र तुम पर पड़ी। तुम धनी की सन्तान हो, यह मैं जानती थी; पर धन की आशा से तुम्हारी ओर नहीं खिंची थी। तुम्हारे पहले कितने ही लोग यहाँ पर आए और गए, पर किसी में इतना तेज नहीं पाया। तुमने आने के साथ ही मुझे घायल किया; एक अयाचित, उपयुक्त, परन्तु अनुचित रूढ़ व्यवहार आरम्भ किया; घृणा से मुँह फेर लिया और अन्त में तमाशे की तरह कुछ देकर चले गए। यह सब बातें क्या तुम्हारे ध्यान में आती हैं?"

देवदास चुप रहे, चन्द्रमुखी फिर कहने लगी—"उसी दिन से मेरी तुम्हारे ऊपर नज़र पड़ी। मैं न तुमसे प्रेम करती थी और न घृणा करती थी; एक नई चीज़ को देख कर जैसे मन में हमेशा ध्यान बना रहता है, तुमको भी

देख कर उसी तरह किसी भाँति नहीं भूल सकी। तुम्हारे आने पर बड़े भय और सतर्क के साथ रहती थी, पर न आने से कुछ अच्छा भी नहीं लगता था। फिर न जाने कैसा मति भ्रम हुआ कि इन दोनों आँखों को सब ही चीज़ें एक सी दीखने लगीं। मैं पहले की अपेक्षा बिलकुल बदल गई—जो पहले थी वह अब नहीं रही। फिर तुमने शराब पीना शुरू किया, शराब से मुझे बड़ी घृणा है। किसी के मतवाला होने पर मुझे उस पर बड़ा क्रोध आता है। पर तुम्हारे मतवाला होने से क्रोध नहीं होता था, बलिक बड़ा दुःख होता था।"

यह कह कर चन्द्रमुखी ने देवदास के पाँव पर हाथ रख कर डबडबाई हुई आँखों से कहा—"मैं बहुत अधम हूँ, मेरे अपराधों पर ध्यान नहीं देना। तुम जितनी ही बातें कहते थे और घृणा करते थे, मैं उतनी ही तुम्हारे पास आना चाहती थी। अन्त में सो जाने पर—रहने दो, ये बातें नहीं कहूँगी, नहीं तो क्रोध कर बैठोगे।" देवदास ने कुछ नहीं कहा, नई तरह की बातचीत उसे कुछ वेदना पहुँचा रही थी। चन्द्रमुखी ने छिपा के आँख पोंछ कर कहा—एक दिन तुमने कहा कि हम लोग कितना सहन करती हैं—लाञ्छना, अपमान, जघन्य अत्याचार, उपद्रव की बातें। उसी दिन से मुझे बड़ा अभिमान हुआ—मैंने सब बन्द कर दिया।

देवदास ने बैठ कर पूछा—लेकिन यह जीवन कैसे कटेगा ?

चन्द्रमुखी ने कहा—वह तो पहले ही कह चुकी।

"और सोचो, यदि उसने तुम्हारा सब रुपया दाब रक्खा तो ?"

चन्द्रमुखी इससे भीत नहीं हुई। शान्त-सहज भाव से कहा—आश्चर्य नहीं, किन्तु इसे भी मैंने सोच रक्खा है कि विपत्ति पड़ने पर तुमसे कुछ भीख माँग लूँगी।

देवदास ने सोच कर कहा—वह पीछे लेना। अभी और कहीं जाने का उद्योग करो।

"कल ही करूँगी। कड़ा बेच कर एक बार मोदी से भेंट करूँगी।"

देवदास ने पॉकेट से सौ-सौ रुपए के पाँच नोट निकाल कर तकिए के नीचे रख कर कहा—कड़ा मत बेचो, सिर्फ़ मोदी के साथ भेंट कर लेना। पर जाओगी कहाँ, किसी तीर्थ-स्थान में ?

"नहीं देवदास; तीर्थ और धर्म के ऊपर मेरी अधिक श्रद्धा नहीं है। कलकत्ते से अधिक दूर नहीं जाऊँगी। आस ही पास के किसी गाँव में जाकर रहूँगी।"

"क्या किसी अच्छे घर में दासी का काम करोगी ?"

चन्द्रमुखी की आँखों में फिर आँसू भर आए। पोंछ कर कहा—इच्छा नहीं होती। स्वाधीन-भाव से स्वच्छन्द

होकर रहूँगी। क्यों दुःख करने जाऊँ? शारीरिक दुख कभी उठाया नहीं है, अब भी नहीं उठा सकूँगी। और अधिक खींचा-तानी करने से छिन्न-भिन्न हो जाऊँगी।

देवदास ने विषरण मुख से कुछ हँस कर कहा—पर शहर के पास रहने से फिर प्रलोभन में पड़ सकती हो। मनुष्य के मन का विश्वास नहीं।

इस बार चन्द्रमुखी का मुख खिल उठा। हँस कर कहा—यह बात सच है; मनुष्य का विश्वास नहीं। पर मैं अब प्रलोभन में नहीं पड़ूँगी। स्त्रियों में लोभ अधिक है—यह मानती हूँ, पर जिस चीज़ का लोभ रहता है, जब उसे ही इच्छापूर्वक छोड़ दिया है, तो फिर मेरे लिए कोई भय नहीं है। एकाएक अगर किसी झोंके में आकर छोड़ती, तब सावधान होना आवश्यक था, लेकिन इतने समय में एक दिन भी तो पछतावा नहीं हुआ, मैं बड़े सुख से हूँ।

देवदास ने सिर हिला कर कहा—स्त्रियों का मन बड़ा चञ्चल, बड़ा अविश्वासी होता है।

इस बार चन्द्रमुखी कुछ खिसक कर एकदम पास में आकर बैठी, हाथ पकड़ कर कहा—देवदास!

देवदास उसके मुँह की ओर देखते रहे, इस बार वे नहीं कह सके कि मुझे मत छुओ।

चन्द्रमुखी ने स्नेह से चक्षु विस्फारित कर, कुछ

कम्पित कण्ठ से, उनके हाथों को अपनी गोद में खींच कर कहा—"आज अन्तिम दिन है, आज क्रोध मत करना। एक बात तुमसे पूछने की बड़ी लालसा है।"—यह कह कर कुछ देर देवदास के मुख की ओर देख कर कहा—"पार्वती ने क्या तुम्हें बड़ी गहरी चोट पहुँचाई है?"

देवदास ने भ्रू कुञ्चित कर कहा—यह क्यों पूछती हो?

चन्द्रमुखी विचलित नहीं हुई। शान्त और दृढ़ स्वर से कहा—मुझे काम है। मैं सच कहती हूँ, तुम्हें दुःख पहुँचने से मुझे भी दुःख होता है। इसे छोड़ शायद मैं बहुत सी बातें जानती हूँ। बीच-बीच में नशे के ज़ोर में तुम्हारे मुह से अनेक ऐसी बातें सुनी हैं। फिर भी मुझे विश्वास नहीं होता कि पार्वती ने तुम्हें ठगा है; वरन् मन में उठता है कि तुमने ही अपने आपको ठगा है। देवदास, मैं तुमसे उम्र में बड़ी हूँ, इस संसार में बहुत-कुछ देखा-सुना है। मेरे मन में क्या बात उठती है, जानते हो? मैं दृढ़ चित्त से कहती हूँ कि इसमें तुम्हारी ही भूल है। मन में आता है, चञ्चल और अस्थिर-चित्त कह कर स्त्रियों की जितनी निन्दा की जाती है, वे उतनी निन्दा के योग्य नहीं हैं। निन्दा करने वाले भी तुम्हीं हो, प्रशंसा करने वाले भी तुम्हीं हो। तुम लोगों के मन में जो कुछ आता है, सहज ही कह देते हो। लेकिन वे ऐसा नहीं कर सकतीं। अपने मन की बात प्रकट नहीं कर सकतीं। प्रकट करने पर भी

सब लोग अच्छी तरह नहीं समझते ; क्योंकि बहुत अस्पष्ट होता है। तुम लोगों के तर्क के सामने वह दब जाता है। फिर वही निन्दा लोगों के मुँह पर स्पष्ट और स्पष्टतर हो उठती है।

चन्द्रमुखी ने थोड़ा ठहर कर अपने कण्ठ-स्वर को और परिष्कृत करके कहा—"इस जीवन में प्रेम का व्यवसाय बहुत दिनों तक किया है, लेकिन प्रेम केवल एक बार किया है। उस प्रेम का मूल्य बहुत बड़ा है, उससे अनेक शिक्षाएँ मिलती हैं। जानते हो, प्रेम एक वस्तु है और रूप का मोह दूसरी। इन दोनों में बड़ा गोलमाल है और पुरुष ही अधिक गोलमाल करते हैं। रूप का मोह तुम लोगों की अपेक्षा हम लोगों में बहुत कम है, इसी से हम लोग तुम लोगों की तरह एकबारगी उन्मत्त नहीं हो उठतीं। तुम लोग जब आकर अपना प्रेम दिखलाते हो, अनेकों प्रकार के भाव प्रकट करते हो, तब हम लोग चुप हो रहती हैं। कितनी ही बार तुम लोगों के मन को क्लेश देने में लज्जा मालूम होती है, दुःख और सङ्कोच होता है। मुँह देखने से अगर घृणा भी होती है, तब भी अक्सर लज्जा से यह नहीं कह सकती कि मैं तुमको प्यार नहीं करती। फिर एक बाह्य प्रणय का अभिनय आरम्भ होता है ; किसी दिन जब उसका अन्त हो जाता है तो पुरुष अस्थिर होकर कहते हैं कि कितनी विश्वासघातिका है! तब सब लोग उसी

बात को सुनते हैं और उसी पर विश्वास करने लग जाते हैं। हम लोग तब भी चुप रहती हैं। मन में कितना ही क्लेश होता है, किन्तु उसे कौन देखने जाता है ?" देवदास ने कुछ नहीं कहा। वह भी बहुत देर तक निःशब्द मुँह की ओर देखती रही, फिर कहा—"यदि कुछ होता है तो शायद थोड़ी-बहुत ममता उत्पन्न होती है, स्त्रियाँ मन में सोचती हैं कि यही प्रेम है। शान्त-धीर भाव से गृहस्थी का काम-काज करती हैं, दुःख के समय प्राणपण से सहायता करती हैं। जब तुम लोग खूब प्रशंसा करते हो, सब लोगों के मुख से कितनी ही बार धन्य-धन्य निकलता है, लेकिन उस समय तक उसका प्रेम का वर्ण-परिचय भी नहीं आरम्भ होता। इसके बाद अगर किसी अशुभ मुहूर्त में अपने हृदय की असह्य वेदना के कारण छटपटाती हुई द्वार के बाहर आकर खड़ी होती है—(यह कह कर उसने देवदास के मुख की ओर तीव्र दृष्टिपात करके कहा) तो तुम लोग चिल्ला कर कह उठते हो—कलङ्किनी! छिः! छिः!" अकस्मात् देवदास चन्द्रमुखी के मुँह को हाथ से दबा कर कह उठे—"चन्द्रमुखी, यह क्या ?" चन्द्रमुखी ने धीरे-धीरे हाथ हटा कर कहा—"डरो नहीं देवदास, मैं तुम्हारी पार्वती की बात नहीं कहती हूँ।"

यह कह कर वह चुप हो रही। देवदास ने कुछ क्षण चुप रह कर अन्यमनस्क होकर कहा—"किन्तु कर्तव्य है,

धर्म-अधर्म तो है ?" चन्द्रमुखी ने कहा—"हाँ, वह तो हई है, और इसीलिए देवदास से वह सच्चा प्रेम करती और उसे सहन भी करती है ; आन्तरिक प्रेम से जो सुख और तृप्ति मिलती है, उसे और बढ़ाने के लिए वह घर में अशान्ति नहीं लाना चाहती। पर देवदास, मैं सच कहती हूँ पार्वती ने तुम्हें कुछ भी नहीं ठगा है, तुम्हीं ने अपने आपको ठगा है। आज इस बात के समझने की शक्ति तुममें नहीं है, यह बात मैं जानती हूँ। अगर कभी समय आएगा तो तुम देखोगे कि मैं सच कहती थी। देवदास की दोनों आँखों में जल भर आया। वे दुखी होकर सोचने लगे कि क्या चन्द्रमुखी की बातें सच हैं ? आँखों के आँसुओं को चन्द्रमुखी ने देखा, किन्तु पोंछने की चेष्टा नहीं की। मन ही मन कहने लगी—"तुम्हें मैंने अनेकों बार अनेकों रूप में देखा है। इससे तुम्हारे मन की गति को मैं भली-भाँति जानती हूँ। साधारण पुरुषों की भाँति तुम माँग कर प्रेम प्रकाशित नहीं कर सकते। तब रूप की बात—रूप को कौन नहीं चाहता ? किन्तु इसीलिए तुम अपने इतने तेज का, रूप के पाँव में आत्म-विसर्जन कर दोगे, यह बात विश्वास में नहीं आती। पार्वती है तो बड़ी रूपवती, लेकिन फिर भी यही विश्वास होता है कि पहले उसीने प्रेम का द्वार खोला, पहले उसी ने प्रेमालाप प्रारम्भ किया।"

मन ही मन कहते-कहते सहसा उसके मुख से अस्फुट स्वर से बाहर निकल पड़ा—अपने को देख कर यह समझती हूँ कि वह तुमको कितना प्यार करती होगी।

देवदास ने चटपट बैठ कर कहा—क्या कहती हो ?

चन्द्रमुखी ने कहा—कुछ नहीं। कहती थी कि वह तुम्हारा रूप देख कर नहीं भूल सकती। तुम्हारे रूप है, लेकिन उसमें भूल नहीं होती। इस तीव्र-रूक्ष रूप पर सबकी दृष्टि नहीं पड़ती। किन्तु जिसकी पड़ती है, उसकी दृष्टि फिर नहीं हट सकती।

यह कह एक दीर्घ निःश्वास लेकर फिर कहा—तुममें न जाने कैसा एक आकर्षण है कि उसे वही जान सकता है, जिसने तुम्हें कभी प्यार किया है। इस स्वर्ग के पाने की इच्छा करके फिर कौन मुड़ सकता है, ऐसी स्त्री इस पृथ्वी में कौन है ?

और कुछ क्षण नीरव रहने के बाद उसने मुख की ओर देख कर धीरे-धीरे कहा—यह रूप सिर्फ़ चार दिन की चाँदनी है। देखते-देखते ही इसका अन्त हो जाता है और चिता के साथ अग्नि में भस्म होकर राख हो जाता है।

देवदास ने विह्वल दृष्टि से चन्द्रमुखी के मुख की ओर देख कर कहा—आज तुम यह सब क्या बक रही हो ?

चन्द्रमुखी ने मधुर हँसी हँस कर कहा—इससे बढ़ कर और कोई मन को उबाने वाली बात नहीं होती देवदास,

कि जिसे हम प्यार न करें वही बलपूर्वक प्रेम की बातें सुनाए। लेकिन मैं यह सिर्फ़ पार्वती के लिए वकालत करती हूँ, अपने लिए नहीं।

देवदास ने चलने को उद्यत होकर कहा—अब मैं चलूँगा।

"थोड़ा और बैठो। कभी तुमको सज्ञान नहीं पाया था—कभी इस तरह दोनों हाथ पकड़ कर बातचीत नहीं कर सकी थी—यह कैसी तृप्ति है।"—कह कर वह हठात् हँस पड़ी।

देवदास ने आश्चर्य से पूछा—हँसी क्यों?

"कुछ नहीं। सिर्फ़ एक पुरानी बात की याद आ गई। आज दस बरस की बात है, जब मैं प्रेम के आवेश में घर छोड़ कर चली आई थी, तब मन में होता था कि कितना प्यार करूँ—सम्भवतः उस समय प्राण भी दे सकती थी। फिर एक दिन एक तुच्छ गहने के लिए ऐसा झगड़ा हुआ कि फिर किसी का मुँह नहीं देखा, मन को यही कह कर सन्तोष दिया कि वह मुझे अच्छी तरह प्यार नहीं करते, नहीं तो क्या एक गहना न देते।"

चन्द्रमुखी एक बार फिर अपने मन में हँस उठी। दूसरे ही क्षण शान्त-गम्भीर मुख से धीरे-धीरे कहा—भाड़ में जाय ऐसा गहना, तब क्या यह जानती थी कि एक मामूली सिर-दर्द के अच्छा करने में प्राण तक को देना

पड़ेगा। तब मैं सीता और दमयन्ती की व्यथा को नहीं समझती थी, जगाई माधव की कथा पर विश्वास नहीं करती थी। अच्छा देवदास, इस संसार में सभी कुछ सम्भव है न ?

देवदास कुछ उत्तर नहीं दे सके, हतबुद्धि की भाँति कुछ क्षण देख कर कहा—मैं जाता हूँ।

"डर क्या है, ज़रा और बैठो। मैं तुमको और भुलावे में नहीं रखना चाहती—मेरे वे दिन अब बीत गए। अब तुम मुझसे जितनी घृणा करते हो, मैं भी अपने से उतनी घृणा करती हूँ। लेकिन देवदास, तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते ?"

अब मानो देवदास में निःश्वास पड़ा। थोड़ा हँस कर कहा—उचित है, पर इच्छा नहीं होती।

"न होने पर भी करो। स्त्री का मुख देख कर बहुत-कुछ शान्ति पाओगे। इसे छोड़ मेरे लिए भी एक राह खुल जायगी—तुम्हारी गृहस्थी में दासी की भाँति रह कर स्वच्छन्द भाव से जीवन व्यतीत करूँगी।"

देवदास ने हस कर कहा—अच्छा, तब मैं तुम्हें बुला लूँगा।

चन्द्रमुखी ने मानो उनकी हँसी न देख कर कहा—देवदास, और एक बात के पूछने की इच्छा होती है।

"क्या ?"

"तुमने इतनी देर तक मेरे साथ बातचीत क्यों की ?"

"क्या कुछ अनुचित है ?"

"यह नहीं जानती, लेकिन नई बात है। शराब पीकर ज्ञान न रहने के पहले तुम कभी मुझसे बात-चीत नहीं करते थे।"

देवदास ने उस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर, विषएण मुख से कहा—आजकल शराब नहीं छूता, मेरे पिता की मृत्यु हो गई है।

चन्द्रमुखी बहुत देर तक उनके मुख की ओर करुणा-भरे नेत्रों से देखती रही, फिर कहा—इसके बाद फिर पियोगे क्या ?

"कह नहीं सकता।"

चन्द्रमुखी ने उनके दोनों हाथों को कुछ खींच कर अश्रुपूर्ण और व्याकुल स्वर से कहा—अगर हो सके तो छोड़ देना। ऐसे अमूल्य जीवन-रत्न को नष्ट मत करो।

देवदास सहसा उठ कर खड़े हो गए, कहा—मैं चलता हूँ। तुम जहाँ जाना वहाँ से ख़बर देना, और अगर कुछ काम हो तो लिखना। मुझसे लज्जा मत करना।

चन्द्रमुखी ने प्रणाम करके पद-धूलि लेकर कहा—आशीर्वाद दो, जिसमें मैं सुखी होऊँ। और एक भीख माँगती हूँ—ईश्वर न करे, किन्तु यदि कभी दासी की आवश्यकता हो, तो मुझे स्मरण करना।

"अच्छा" कह कर देवदास चले गए। चन्द्रमुखी ने दोनों हाथों से मुख ढाँप कर रोते-रोते कहा—भगवान्, ऐसा करो जिसमें एक बार और दर्शन मिले।

चौदहवाँ परिच्छेद

दो वर्ष हुए, पार्वती महेन्द्र का विवाह करके निश्चिन्त हुई है। जलदबाला बुद्धिमती और कार्य-पटु है। अब पार्वती के बदले गृहस्थी का बहुत-कुछ काम-काज वही करती है। पार्वती ने अब अपना मन दूसरी ओर लगाया है। आज पाँच वर्ष हुए, उसका विवाह हुआ था; किन्तु अभी तक उसके कोई सन्तान नहीं हुई। अपने लड़का-लड़के के न रहने के कारण वह दूसरों के लड़की-लड़कों को बहुत प्यार करती है। ग़रीब-ग़ुरबे की बात को छोड़िए, जिनके पास कुछ रुपए-पैसे भी हैं, उनके पुत्र-पुत्रियों का भी अधिकांश भार वही वहन करती है। इसके अतिरिक्त ठाकुरबाड़ी के काम-काज, साधु-संन्यासियों की सेवा, लँगड़े-लूलों की शुश्रूषा में अपना सारा दिन बिता देती थी। इसका व्यसन स्वामी को लगा कर पार्वती ने एक और अतिथिशाला भी निर्माणित की है। उसमें

निराश्रय और असहाय लोग अपनी इच्छा के अनुकूल रह सकते हैं। ज़मीन्दार के घर से उन लोगों को खाना-पीना मिलता है। और एक काम पार्वती बहुत छिपा कर करती है, स्वामी को भी नहीं जानने देती। वह ऊँचे घराने के दरिद्र लोगों को गुप्त रीति से रुपए-पैसे से सहायता देती है। यही उसका निजी ख़र्च है। स्वामी के पास से प्रति मास जो कुछ उसको मिलता है, सब इसी में ख़र्च कर देती है। किन्तु चाहे जिस तरह से जो कुछ व्यय होता था, वह सदर कचहरी के नायब और गुमाश्ता से नहीं छिपा रहता था। वे लोग आपस में इस विषय पर बक-बक, झक-झक किया करते थे। दासियाँ लुक-छिप कर सुन आती हैं कि गृहस्थी का व्यय आजकल पहले की अपेक्षा दूना हो गया है; तहवील ख़ाली पड़ गई, कुछ भी बचने नहीं पाता। गृहस्थी के बाज़े ख़र्च के बढ़ने से दास-दासियों को मर्मान्तिक पीड़ा होती है। वे लोग ये सब बातें जलदबाला को सुना आती हैं। एक दिन रात में उसने स्वामी से कहा—तुम क्या इस घर के कोई नहीं हो?

महेन्द्र ने कहा—क्यों, क्या बात है?

स्त्री ने कहा—दास-दासियाँ जानती हैं और तुम नहीं जानते? ससुर जी को तो नई माँ प्राण से बढ़ कर हैं, वे तो कुछ कहेंगे ही नहीं; परन्तु तुम्हें तो कहना उचित है।

महेन्द्र ने बात नहीं समझी, परन्तु उत्सुक हो, पूछा—किसकी बात कहती हो?

जलदबाला गम्भीर भाव से स्वामी को मन्त्रणा देने लगी—नई माँ के कोई लड़की-लड़का तो है हो नहीं, फिर उन्हें गृहस्थी से क्यों प्रेम होने लगा, देखते नहीं हो सब उड़ाए डालती हैं?

महेन्द्र ने भ्रू कुञ्चित करके कहा—क्यों, कैसे?

जलदबाला ने कहा—तुम्हारे आँखें होतीं तो देखते। आजकल गृहस्थी का ख़र्च दूना हो गया है—सदाव्रत, दान-ख़ैरात, अतिथि-फ़क़ीर आदि के ऊपर अन्धाधुन्ध व्यय चढ़ रहा है। अच्छा वे तो अपना परलोक सुधार रही हैं; किन्तु तुम्हारे भी लड़की-लड़के हैं? तब वे लोग क्या खायँगे? अपनी पूँजी बिकवा कर अन्त में भीख माँगोगे क्या?

महेन्द्र ने शय्या पर बैठ कर कहा—तुम किसकी बात कहती हो, माँ की?

जलदबाला ने कहा—मेरा भाग्य जल गया, जो यह सब बातें तुमसे मुझे कहनी पड़ती हैं।

महेन्द्र ने कहा—इसीलिए तुम माँ के नाम नालिश करने आई हो?

जलदबाला ने क्रोध से कहा—मुझे नालिश-मुक़दमे से

काम नहीं, केवल भीतर की बातें जना दीं, नहीं तो पीछे मुझी को दोष देते।

महेन्द्र बहुत देर तक चुप बैठे रहे, फिर कहा—तुम्हारे बाप के घर तो रोज़ हाँडी भी नहीं चढ़ती, तुम ज़मीन्दार के घर के काम को क्या जानोगी?

इस बार जलदबाला ने भी क्रोध करके कहा—तुम्हारी माँ के बाप के घर कितनी अतिथिशालाएँ हैं, ज़रा मैं सुनूँ तो?

महेन्द्र ने और तर्क-वितर्क नहीं किया, चुपचाप सो रहे। सुबह उठ कर पार्वती के पास आकर कहा—कैसा विवाह किया माँ, इसको साथ लेकर गृहस्थी चलाना कठिन है। मैं कलकत्ते जाऊँगा।

पार्वती ने अवाक् होकर कहा—क्यों?

"तुम लोगों को कड़ी बातें कहती है, इसलिए मैंने उसका त्याग किया।"

पार्वती कुछ दिन से बड़ी बहू के आचरण को देखती आती है; किन्तु उसने उस बात को छिपा के हँस कर कहा—"छिः! वह तो बहुत अच्छी लड़की है, ऐसा न कहो।" इसके बाद जलदबाला को एकान्त में बुला कर पूछा—बहू! झगड़ा हुआ है क्या?

सुबह से स्वामी के कलकत्ता जाने की तैयारी देख, जलदबाला मन ही मन डरती थी; सास की बात सुन कर

रोते-रोते कहा—मेरा दोष नहीं है माँ! किन्तु यही दासी सब खरच-बरच की बातें करती है।

पार्वती ने तब सभी बातें सुनीं और आप ही लज्जित होकर बहू की आँखें पोछ कर कहा—बहू, तुम ठीक कहती हो। किन्तु मैं वैसी गृहस्थिन नहीं हूँ, इसीलिए ख़र्च की ओर ध्यान नहीं रहा।

फिर महेन्द्र को बुला कर कहा—"महेन्द्र, बिना किसी अपराध के क्रोध नहीं करना चाहिए। तुम स्वामी हो, तुम्हारी मङ्गल-कामना के सामने स्त्री के लिए सब कुछ तुच्छ है। बहू लक्ष्मी है।" किन्तु उसी दिन से पार्वती ने अपना हाथ मोड़ लिया। अतिथिशाला और ठाकुरबाड़ी की अब वैसी सेवा नहीं होती। अनाथ, अन्धे, फ़क़ीर आदि कितने ही लोग लौटने लगे। मालिक ने यह सुन पार्वती को बुला कर कहा—क्या लक्ष्मी का भण्डार ख़ाली हो गया?

पार्वती ने साहस के साथ उत्तर दिया—केवल देने से ही नहीं चलता, कुछ दिन जमा भी करना चाहिए। देखते नहीं, ख़र्च कितना बढ़ गया है?

"इससे क्या मतलब, मुझे कै दिन रहना है, पुण्य-धर्म करके परलोक तो बनाना ही चाहिए।"

पार्वती ने हँस कर कहा—यह तो बिलकुल स्वार्थ की बात है। अपना ही देखोगे और लड़की-लड़कों को

क्या बहा दोगे ? कुछ दिन तक चुप रहो, फिर सब उसी तरह चलेगा। मनुष्य के काम का कभी अन्त नहीं होता।

अस्तु, चौधरी जी चुप हो रहे।

पार्वती को कोई काम न रहा, इसी से चिन्ता कुछ बढ़ गई। किन्तु सारी चिन्ता का एक ही विषय है। जिसकी आशा रहती है, उसकी एक प्रकार की चिन्ता रहती है और जिसकी आशा नहीं रहती, उसकी दूसरे प्रकार की चिन्ता रहती है। पूर्वोक्त चिन्ता में सजीवता है, सुख है, तृप्ति है, दुःख है और उत्कण्ठा है; इसी से मनुष्य श्रान्त हो जाते हैं—अधिक काल तक चिन्ता नहीं करते। किन्तु नैराश्य में सुख नहीं है, दुःख नहीं है, उत्कण्ठा नहीं है, केवल तृप्ति है। नेत्र से जल झरता है, गम्भीरता भी रहती है, किन्तु नित्य नवीन मर्मवेदन.
होती। हलके बादल के समान इधर-उधर मँड़राती ह
जब तक हवा नहीं लगती, तब तक स्थिरता रहती है
आप हैं।
ज्योंही हवा लगती है, ग़ायब हो जाती है।
।स करती हैं
उद्वेगहीन चिन्ता में एक सार्थकता लाभ कर
: केवल भाई के
की भी आजकल ठीक यही दशा है। पूज
है। सुनती हूँ कि
समय अस्थिर, उद्देशहीन और हताश-स
ते हैं। जितने दिन
चटपट तालसोनापुर के बँसवाड़ी, आम
ते हैं, रुपया पाने पर
शाला, घर, बाँध के तीर आदि स्थान
इसके बाद वह किसी ऐसे स्थान ं

"उनके पिता को मरे आज ढाई बरस हुए। सुन कर आश्चर्य होता है कि इसी थोड़े समय में ही अपनी आधी सम्पत्ति फूँक दी। द्विजदास बड़े हिसाब से रहते हैं, इसी से किसी भाँति अपने पिता की सम्पत्ति को अपने ही पास बचा रक्खी। नहीं तो आज दूसरे लोग लूट खाते। शराब और वेश्या के पीछे सारा धन स्वाहा हो रहा है, कौन उसकी रक्षा कर सकता है? एक यम कर सकते हैं। और उसमें भी देरी नहीं है। बड़ी रक्षा हुई जो तुम्हारा विवाह नहीं हुआ।

"हाय-हाय! दुःख भी होता है। वह सोने-जैसा वर्ण नहीं, वह रूप नहीं, वह श्री नहीं; मानो वह देवदास नहीं, कोई दूसरे ही हैं। रूखे सिर के बाल हवा में उड़ा करते हैं, आँखें भीतर घुस गई हैं और नाक खड्ग की भाँति बाहर निकली हुई है। कितना कुत्सित रूप हो गया है, यह तुमसे कहाँ तक कहूँ! देखने से घृणा होती है, डर मालूम होता है। सारे दिन नदी के किनारे-किनारे और बाँध के ऊपर हाथ में बन्दूक लिए चिड़ियाँ मारा करते हैं। धूप में सिर में चक्कर आने से वह बाँध के ऊपर उसी बेर के पेड़ के साए में नीचा सिर किए बैठे रहते हैं। सन्ध्या होने के बाद घर पर जाकर शराब पीते हैं, रात में सोते हैं या घूमते हैं, यह भगवान् जानें।

"उस दिन सन्ध्या के समय मैं नदी से जल लेने गई

थी। देखा, देवदास का मुँह सूखा हुआ है, बन्दूक़ हाथ में लिए इधर-उधर घूम रहे हैं! मुझे पहचान कर, पास आकर खड़े हुए, मैं डर से मर गई! घाट पर कोई नहीं था, मैं उस दिन अपने आपे में नहीं थी। ईश्वर ने रक्षा की कि उन्होंने किसी क़िस्म की बुरी छेड़ख़ानी नहीं की, केवल सज्जनोचित शान्त भाव से कहा—मनो, अच्छी तरह तो हो?

"मैं और क्या करती, डरते-डरते सिर नीचा किए हुए कहा—हाँ।

"तब उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास फेंक कर कहा—"सुखी रहो बहिन, तुम्हें देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई।" फिर धीरे-धीरे चले गए। मैं गिरते-पड़ते वहाँ से बड़े ज़ोर से भागी। बाप रे! भाग्य से उन्होंने हाथ आदि कुछ नहीं पकड़ा। रहने दो इन बातों को—इन सब दुर्वृत्ति की बातों के लिखने की जगह चिट्ठी में नहीं है।

"बड़ा कष्ट दिया, क्यों बहिन? आज भी यदि उन्हें नहीं भूली होंगी तो अवश्य ही कष्ट होगा, किन्तु लाचारी है। और यदि असावधानता-वश कोई अपराध हुआ हो, तो अपने सहज गुण से इस स्नेहाकांक्षिणी—मनो बहिन को क्षमा करना।"

कल चिट्ठी आई है। आज उसने महेन्द्र को बुला कर कहा—दो पालकी और बत्तीस कहारों को बुला दो, मैं अभी तालसोनापुर जाऊँगी।

महेन्द्र ने आश्चर्य से पूछा—पालकी और कहार तो मैं बुलाए देता हूँ; किन्तु दो क्यों माँ ?

पार्वती ने कहा—तुम साथ चलोगे। रास्ते में अगर मर जाऊँगी, तो मुँह में आग देने के लिए बड़े लड़के की ज़रूरत पड़ेगी।

महेन्द्र ने और कुछ नहीं कहा। पालकी आने पर दोनों आदमियों ने प्रस्थान किया।

चौधरी जी यह सुन कर व्यस्त हो उठे, दास-दासियों से पूछा, किन्तु कोई ठीक कारण नहीं बता सकीं। तब उन्होंने अपनी बुद्धि से और पाँच दरबान, दास-दासियाँ भेज दीं।

एक सिपाही ने पूछा—रास्ते में भेंट होने पर पालकी लौटा लावेंगे कि नहीं।

उन्होंने कुछ सोच कर कहा—नहीं, लौटाल लाने का कोई काम नहीं है। तुम लोग साथ जाना, जिसमें कोई तकलीफ़ न हो।

उसी दिन सन्ध्या के बाद दोनों पालकियाँ तालसोनापुर पहुँचीं। किन्तु देवदास गाँव पर नहीं थे, उसी दिन दोपहर में कलकत्ते चले गए थे।

पार्वती ने सिर पीट कर कहा—दुर्भाग्य! और फिर मनोरमा के साथ भेंट की।

मनोरमा ने पूछा—क्या देवदास को देखने आई थीं ?

पार्वती ने कहा—नहीं, साथ ले जाने के लिए आई थी। उनका यहाँ पर अपना कोई नहीं है।

मनोरमा अवाक् हो रही, कहा—क्या कहती हो? ज़रा भी लज्जा नहीं करतीं?

"लज्जा, और फिर किससे? अपनी चीज़ अपने साथ ले जाऊँगी। इसमें लज्जा क्या है?"

"छिः-छिः! क्या कहती हो? जिससे ज़रा भी सम्पर्क नहीं—ऐसी बात मुँह पर न लाओ।"

पार्वती ने मलिन हँसी हँस कर कहा—मनो बहिन, ज्ञान होने के बाद से जो बात मेरे हृदय में बस रही है, जब-तब वही मुख से बाहर निकल जाती है, तुम बहिन हो, इसीसे इन बातों को सुन लेती हो।

दूसरे दिन पार्वती माता-पिता के चरणों में प्रणाम करके फिर पालकी पर सवार होकर चली गई।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद.

आज दो वर्ष हुए, चन्द्रमुखी ने अपने रहने के लिए अशथझूरी गाँव में छोट नदी के तीर पर एक ऊँची जगह में दो छोटे-छोटे मिट्टी के घर बनाए हैं। पास ही में एक खलिहान है, वहाँ पर उसकी एक हृष्ट-पुष्ट काली गाय बँधी रहती है। दो घरों में, एक में रसोई-घर और भण्डार है तथा दूसरे में वह सोती है। सोकर उठने के पहले ही रमावाग्दी की स्त्री सब घर-द्वार झाड़-बुहार कर साफ़ कर देती है। मकान के चारों ओर सहन बना है, बीच में एक बेर का पेड़ है और एक ओर एक तुलसी की चौतरिया है। सामने नदी की धार है, उसके आस-पास लोगों ने खजूर और केले आदि के वृक्ष लगा रक्खे हैं। चन्द्रमुखी को छोड़, इस

घाट का उपयोग और कोई नहीं करता। वर्षा-काल में नदी के फफनाने पर चन्द्रमुखी के मकान के नीचे तक जल आ जाता है। उस समय लोग व्यग्र हो उठते हैं और कुदाली से मिट्टी खोद कर जगह को ऊँची बनाने के लिए दौड़ आते हैं। गाँव में ऊँची जाति के लोग नहीं रहते। किसान, अहीर, कहार, कुर्मी, वाग्दी, दो घर कलवार और दो घर चमार रहते हैं। चन्द्रमुखी ने गाँव में आकर देवदास को सूचना दी; उत्तर में उन्होंने कुछ और रुपए भेज दिए। इन रुपयों में से चन्द्रमुखी गाँव के लोगों को उधार देती है। आपद्-विपद् में सभी आकर उससे रुपया उधार ले जाते हैं। चन्द्रमुखी सूद नहीं लेती उसके बदले कन्द-मूल, शाक-भाजी, जिसकी जो इच्छा होती है, दे जाता है। असल के लिए भी किसी से ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं करती। जो नहीं दे सकते, वे नहीं देते।

चन्द्रमुखी हँस कर कहती—अब तुझे कभी न दूँगी।

वह नम्र भाव से कहता—माँ, ऐसा आशीर्वाद दो कि इस बार अच्छी फ़सल हो।

चन्द्रमुखी आशीर्वाद देती; किन्तु यदि फिर अच्छी फ़सल न होती, तो वे फिर रोते हुए आकर हाथ पसारते और चन्द्रमुखी फिर देती। मन ही मन हँस कर कहती—वे अच्छी तरह से रहें, मुझे रुपए-पैसे की क्या कमी है।

किन्तु वे कहाँ हैं? प्रायः छः महीने हुए, उसे कोई

ख़बर नहीं मिली। चिट्ठी लिखी, किन्तु कोई जवाब नहीं मिला। रजिस्ट्री लगाई, वह लौट आई। चन्द्रमुखी ने एक ग्वाले को अपने घर के पास बसा रक्खा था। उसके लड़के के विवाह में साढ़े दश गण्डे रुपए से सहायता दी थी; एक जोड़ा कड़ा भी ख़रीद दिया था। उसका सारा परिवार चन्द्रमुखी का आश्रित और आज्ञाकारी था। एक दिन प्रातःकाल चन्द्रमुखी ने भैरव ग्वाला को बुला कर कहा—भैरव, यहाँ से तालसोनापुर कितनी दूर है, जानते हो?

भैरव ने सोच कर कहा—यहाँ से कोई दो धाप पर कचहरी है।

चन्द्रमुखी ने पूछा—वहाँ पर ज़मीन्दार रहते हैं?

भैरव ने कहा—हाँ, वे भारी ज़मीन्दार हैं। यह गाँव भी उन्हीं का है। आज तीन वर्ष हुए, उनका स्वर्गवास हो गया। उनके श्राद्ध में सारी प्रजा ने एक महीने तक पूरी-तरकारी खाई थी। अब उनके दो लड़के हैं; वे लोग बहुत भारी आदमी हैं—राजा हैं।

चन्द्रमुखी ने पूछा—भैरव, तुम मुझे वहाँ तक पहुँचा सकते हो?

भैरव ने कहा—क्यों नहीं पहुँचा सकता; जिस दिन इच्छा हो, चलो।

चन्द्रमुखी ने उत्सुक होकर कहा—तब चलो न भैरव, मैं आज ही चलूँगी।

भैरव ने विस्मित होकर कहा—"आज ही ?" फिर चन्द्रमुखी के मुख की ओर देख कर कहा—"तो तुम जल्दी से रसोई-पानी से निपट लो और मैं भी तब तक थोड़ी फरुही बाँध कर आता हूँ।"

चन्द्रमुखी ने कहा—मैं आज रसोई नहीं करूँगी। भैरव, तुम फरुही लेकर आओ।

भैरव घर पर गया और कुछ फरुही चादर में बाँध कर, एक लाठी हाथ में लेकर तुरन्त लौट आया, कहा—तब चलो; पर क्या तुम कुछ खाओगी नहीं ?

चन्द्रमुखी ने कहा—नहीं भैरव, अभी मेरा पूजा-पाठ नहीं हुआ है, अगर समय पाऊँगी तो वहीं पर सब करूँगी।

भैरव आगे-आगे रास्ता दिखलाता हुआ चला। पीछे-पीछे चन्द्रमुखी बड़े कष्ट के साथ पगडण्डी के ऊपर चलने लगी। अभ्यास न रहने के कारण दोनों कोमल पाँव क्षत-विक्षत हो गए। धूप के कारण सारा मुख लाल हो उठा। खाना-पीना कुछ न होने पर भी चन्द्रमुखी खेत पर खेत पार करती हुई चलने लगी। खेतिहर किसान लोग आश्चर्यित होकर उसके मुख की ओर देखते थे।

चन्द्रमुखी एक लाल पाढ़ की साड़ी पहने हुए थी, हाथ में दो सोने के कड़े पड़े हुए थे, सिर पर ललाट तक घूँघट था और सारा शरीर एक मोटे बिछौने की चादर

से ढँका हुआ था। सूर्यदेव के अस्त होने में अब और अधिक विलम्ब नहीं है। उसी समय दोनों गाँव में आकर उपस्थित हुए। चन्द्रमुखी ने थोड़ा हँस कर कहा—भैरव, तुम्हारा दो धाप इतनी जल्दी कैसे समाप्त हो गया?

भैरव ने इस परिहास को न समझ कर सरल भाव से कहा—इस बार तो चली आईं, पर क्या तुम्हारी सुखी देह आज ही फिर लौट कर चल सकेगी?

चन्द्रमुखी ने मन ही मन कहा—आज क्या जान पड़ता है, कल भी ऐसे इतना रास्ता नहीं चल सकूँगी। प्रकाश में कहा—भैरव, क्या यहाँ गाड़ी नहीं मिलेगी?

भैरव ने कहा—मिलेगी क्यों नहीं, बैलगाड़ी मिलेगी, कहो तो ठीक करके ले आवें? गाड़ी ठीक करने का आदेश देकर चन्द्रमुखी ने ज़मीन्दार के घर में प्रवेश किया।

भैरव गाड़ी का प्रबन्ध करने के लिए दूसरी ओर चला गया। भीतर ऊपरी खण्ड में—दालान में बड़ी बहू (वर्तमान ज़मीन्दार की गृहिणी) बैठी थीं। एक दासी चन्द्रमुखी को वहीं लेकर आई। दोनों ने दोनों को एक बार ध्यानपूर्वक देखा।

चन्द्रमुखी ने नमस्कार किया। बड़ी बहू शरीर पर अधिक अलङ्कार नहीं धारण करतीं, किन्तु आँखों के कोण पर अहङ्कार झलका करता है। दोनों ओठ और दाँत, पान और मिस्सी से काले पड़ गए हैं। गाल कुछ ऊपर उठे

हुए हैं और सारा चेहरा भरा-पुरा। केशों को इस प्रकार सजा कर बाँधती हैं कि कपाल जगमगा उठता है। दोनों कानों में मिला कर कोई बीस-तीस छोटी-बड़ी बालियाँ पड़ी हैं। नाक के नीचे एक बुलाक लटकता है। नाक के एक ओर लौंग पहने हैं। जान पड़ता है, यह सूराख़ नथ पहनने के लिए बना है।

चन्द्रमुखी ने देखा, बड़ी बहू बहुत मोटी-सोटी है, रङ्ग विशेष श्याम है, आँखें बड़ी-बड़ी हैं, गोल गठन का मुख है, काले पाढ़ की साड़ी पहने हैं और एक नारङ्गी रङ्ग की कुरती पहने हैं—यह सब देख, चन्द्रमुखी के मन में कुछ घृणा सी उत्पन्न हुई। बड़ी बहू ने देखा कि चन्द्रमुखी के वयस्क होने पर भी उसका सौन्दर्य कम नहीं हुआ है। दोनों ही सम्भवतः समवयस्क हैं, किन्तु बड़ी बहू ने मन ही मन इसे स्वीकार नहीं किया। इस गाँव में पार्वती के अतिरिक्त इतना सौन्दर्य और किसी में नहीं देखा। आश्चर्यित होकर पूछा—तुम कौन हो?

चन्द्रमुखी ने कहा—मैं आप की ही एक प्रजा हूँ, ख़ज़ाने की मालगुज़ारी कुछ बाक़ी पड़ गई थी, उसी को देने आई हूँ।

बड़ी बहू ने मन ही मन प्रसन्न होकर कहा—तो यहाँ क्यों आई, कचहरी में जाओ।

चन्द्रमुखी ने मीठी हँसी हँस कर कहा—माँ, मैं

बड़ी दुखिया हूँ, सब रुपया नहीं दे सकती। सुना है कि आप बड़ी दयावती हैं; इसीसे आपके पास आई हूँ कि कुछ माफ़ कर दें।

इस प्रकार की बात बड़ी बहू ने अपने जीवन में पहली ही बार सुनी। उनमें दया है, मालगुज़ारी माफ़ कर सकती हैं, आदि कहने के कारण चन्द्रमुखी तत्काल ही उनकी प्रियपात्री हो गई। बड़ी बहू ने कहा—दिन भर में कितने ही रुपए मुझे छोड़ने होते हैं, कितने ही लोग मुझे आकर पकड़ते हैं; मैं नाहीं नहीं कर सकती, इसलिए सभी मेरे ऊपर क्रोध भी करते हैं। तो तुम्हारा कितना रुपया बाक़ी पड़ता है?

"अधिक नहीं, कुल दो रुपए; पर मेरे लिए यही दो रुपए पहाड़ हो रहे हैं; सारे दिन आज रास्ता चल कर यहाँ आई हूँ।"

बड़ी बहू ने कहा—अहा! तुम दुःखिया हो, तुम्हारे ऊपर मुझे दया करनी उचित है। ऐ विन्दू! इनको बाहर लिए जाओ, दीवान जी से मेरा नाम लेकर कह देना कि दो रुपए माफ़ कर दें। अच्छा, तुम्हारा घर कहाँ है?

चन्द्रमुखी ने कहा—आपके ही राज्य में—यही अशथ-झूरी गाँव में। अच्छा माँ, क्या छोटे मालिक नहीं हैं?

बड़ी बहू ने कहा—अभागी! छोटा मालिक कौन है? दो दिन बाद सब मेरा ही तो होगा।

चन्द्रमुखी ने उद्विग्न होकर पूछा—क्यों ? जान पड़ता है, छोटे बाबू पर ख़ूब क़र्ज़ है ?

बड़ी बहू ने थोड़ा हँस कर कहा—मेरे यहाँ कई गाँव बन्धक हैं। अब तक तो सब बिक गया होता। कलकत्ते में शराब और वेश्या के पीछे सारा धन लुटाए डाल रहे हैं, उसका कोई हिसाब नहीं, कोई अन्त नहीं।

चन्द्रमुखी का मुख सूख गया ; थोड़ा ठहर कर उसने पूछा—हाँ माँ, तो छोटे बाबू इसी से घर भी नहीं आते ?

बड़ी बहू ने कहा—आते क्यों नहीं हैं ! जब रुपए की ज़रूरत पड़ती है तो आते हैं। उधार काढ़ते हैं, ज़मीन बन्धक रखते हैं, फिर चले जाते हैं। अभी दो ही महीने हुए आए थे, बारह हज़ार रुपए ले गए। बचने की भी उम्मीद नहीं है, शरीर में कई एक बुरे रोग लग गए हैं—छिः ! छिः !!

चन्द्रमुखी सिहर उठी, मलिन मुख से उसने पूछा—वे कलकत्ते में कहाँ रहते हैं ?

बड़ी बहू ने सिर ठोक कर, प्रसन्न मुख से कहा—बड़ी बुरी दशा है ! यह क्या कोई जानता है ? कहाँ, किस होटल में रहते हैं, किस दोस्त के मकान पर पड़ रहते हैं—यह वही जानें या उनका दुर्भाग्य जाने।

चन्द्रमुखी सहसा उठ खड़ी हुई, और बोली—अब मैं जाती हूँ।

बड़ी बहू ने थोड़ा आश्चर्यित होकर कहा—जाओगी ? अरी ओ बिन्दू !......

चन्द्रमुखी ने बीच ही में बाधा देकर कहा—"ठहरो माँ, मैं खुद ही कचहरी जाती हूँ।" यह कह कर वह धीरे-धीरे चली गई। घर के बाहर आकर देखा, भैरव आसरा देख रहा है, और बैलगाड़ी एक किनारे खड़ी है। उसी रात को चन्द्रमुखी घर लौट आई। प्रातःकाल भैरव को फिर बुला कर कहा—भैरव, मैं आज कलकत्ते जाऊँगी। तुम तो साथ जा नहीं सकोगे, इसलिए तुम्हारे लड़के को साथ ले जाऊँगी। बोलो, क्या कहते हो ?

भैरव—जैसी तुम्हारी इच्छा हो। लेकिन कलकत्ते क्यों जाती हो माँ, क्या कोई ख़ास काम है ?

चन्द्रमुखी—हाँ भैरव, ख़ास काम है।

भैरव—और आओगी कब ?

चन्द्रमुखी—यह नहीं कह सकती भैरव। अगर हो सका तो जल्दी ही आऊँगी और नहीं तो देर लगेगी। और अगर नहीं आ सकी तो घर-द्वार सब तुम्हारा ही होगा।

पहले तो भैरव अवाक् हो गया, फिर उसकी दोनों आँखों में जल भर आया; कहा—यह कैसी बात कहती हो माँ ! तुम्हारे न आने से इस गाँव के लोग कैसे रह सकेंगे ?

चन्द्रमुखी के नेत्र भी सजल हो उठे; थोड़ी मीठी हँसी हँस कर कहा—यह क्यों भैरव, मैं तो कुल दो ही वर्ष से आई हूँ, इसके पहले तुम लोग कैसे रहते थे ?

इसका उत्तर मूर्ख भैरव नहीं दे सकता; किन्तु चन्द्रमुखी हृदय में सब कुछ समझती थी। भैरव का लड़का केवल उसके साथ जायगा। गाड़ी पर आवश्यक चीज़-वस्तु लाद कर चलने के समय सभी स्त्री-पुरुष देखने आए, देख कर रोने लगे। चन्द्रमुखी अपनी आँखों के आँसू भी नहीं रोक सकी। नाश हो ऐसे कलकत्ते का, यदि देवदास न होते तो कलकत्ते में रानी का पद मिलने पर भी चन्द्रमुखी ऐसे प्रेम को तृणवत् त्याग कर कभी न जा सकती।

दूसरे दिन वह क्षेत्रमणि के घर पर आ उपस्थित हुई। उसके पहले घर में इस समय दूसरे लोग रहते थे। क्षेत्रमणि अवाक् हो गया, पूछा—बहिन, इतने दिनों तक कहाँ थीं ?

चन्द्रमुखी ने सत्य बात को छिपा कर कहा—इलाहाबाद थी।

क्षेत्रमणि ने एक बार अच्छी तरह से सारा शरीर देख कर कहा—तुम्हारे सब गहने क्या हुए बहिन ?

चन्द्रमुखी ने हँस कर संक्षेप में उत्तर दिया—सब हैं।

उसी दिन मोदी से भेंट करके कहा—दयाल, मेरे कितने रुपए चाहिए ?

दयाल बड़ी विपद् में पड़ा, कहा—यही कोई साठ-सत्तर रुपए चाहिए। आज नहीं, दो दिन के बाद दूँगा।

"तुम्हें कुछ न देना होगा, यदि मेरा एक काम कर दो।"

"कौन काम ?"

"दो-तीन दिन के भीतर ही हम लोगों के मुहल्ले में एक किराए का घर ठीक कर दो—समझे ?"

दयाल ने हँस कर कहा—समझा।

"अच्छा घर हो। अच्छे-अच्छे बिछौने-चाद्दर, चारपाई, लैम्प, दो कुरसियाँ, एक टेबिल हो—समझे ?"

दयाल ने सिर नीचा कर लिया।

"साड़ी, कुर्ती, शृङ्गारदान, अच्छे गिलट के गहने आदि कहाँ मिल सकते हैं ?"

दयाल मोदी ने ठिकाना बता दिया।

चन्द्रमुखी ने कहा—तब वह भी एक सेट अच्छा सा देख कर ख़रीदना होगा। मैं साथ चल कर पसन्द कर लूँगी। फिर हँस कर कहा—मुझे जो-जो चाहिए सो तो जानते ही हो, एक दासी भी ठीक करनी होगी।

दयाल ने कहा—कब चाहिए ?

"जितना जल्द हो सके। दो-तीन दिन के भीतर ही ठीक होने से अच्छा होगा।" यह कह कर उसके हाथ में सौ रुपए का एक नोट रख कर कहा—अच्छी-अच्छी चीज़ें ले आना, सस्ती नहीं देखना।

तीसरे दिन वह नए घर में चली गई। सारा दिन केवलराम को साथ लेकर अपनी इच्छानुसार घर को सजाया एवं सन्ध्या के पहले अपने को सजाने बैठी। साबुन से मुँह धोया इसके बाद पाउडर लगाया, लाल रङ्ग से पाँव को रँगा और पान खाकर ओठ रँगा। फिर सारे अङ्गों में आभूषण धारण किए, कुर्ती और साड़ी पहनी। बहुत दिन के बाद आज केश सँवार कर सिर में एक टीका लगाया। आइने में मुँह देख कर मन ही मन कहा—अब और न जाने क्या-क्या भाग्य में बदा है।

देहाती बालक केवलराम ने यह साज-बाज और पोशाक देख कर भीत भाव से पूछा—यह क्या बहिन?

चन्द्रमुखी ने हँस कर कहा—केवल, आज मेरे पति आवेंगे।

केवलराम विस्मय नेत्रों से देखता रहा।

सन्ध्या के बाद क्षेत्रमणि आया, पूछा—बहिन, अब यह सब क्या?

चन्द्रमुखी ने मुख नीचा कर, हँस कर कहा—क्यों, यह सब अब नहीं चाहिए?

क्षेत्रमणि कुछ देर चुपचाप देखता रहा, फिर कहा—जितनी उम्र बढ़ती जाता है, उतना ही सौन्दर्य भी बढ़ता जाता है।

वह चला गया। चन्द्रमुखी आज बहुत दिनों के बाद

फिर खिड़की पर आकर बैठी। एकटक रास्ते की ओर देखती रही। यही उसका काम है; यही करने वह आई है। जितने दिन वह यहाँ रहेगी उतने दिन यही करेगी। कोई-कोई नए आदमी आना चाहते थे, द्वार ठेलते थे किन्तु उसी समय केवलराम कहता था—यहाँ नहीं आना।

पुराने परिचित लोग में से यदि कोई आता तो चन्द्र-मुखी बैठ कर, हँस-हँस कर बातें करती। बात ही बात में देवदास की बात पूछती, जब वे न बता सकते, तो उदास मन से बिदा कर देती। रात अधिक बीतने पर स्वयं बाहर निकल जाती थी। मुहल्ले-मुहल्ले, द्वार-द्वार घूमती-फिरती; छिप कर लोगों की बातें कान देकर सुनती; कुछ लोग अनेकों प्रकार की बातें करते थे; किन्तु वह जो सुनना चाहती थी, वह कहीं नहीं सुन पाती थी। आते-जाते हुए लोगों में से वह बहुतों को देवदास समझ कर पास जाती थी, किन्तु जब किसी दूसरे को देखती थी तो धीरे से लौट आती थी। दोपहर के समय वह अपनी पुरानी परिचिता साथिनों के घर पर जाती। बात ही बात में पूछती—क्यों, देवदास के विषय में भी कुछ जानती हो?

वह पूछतीं—कौन देवदास?

चन्द्रमुखी उत्सुक भाव से परिचय देने लगती—गोरा रङ्ग है, सिर पर घुँघराले बाल हैं, ललाट के एक

ओर चोट का दाग़ है, धनी आदमी हैं, बहुत रुपया ख़र्च करते हैं ; क्या तुम पहचानती हो ?

कोई पता नहीं बता सकता था। हताश होकर उदास मन से चन्द्रमुखी घर लौट आती थी। बड़ी रात तक रास्ते की ओर देखती रहती। नींद आने पर विरक्त भाव से मन ही मन कहती—यह क्या तुम्हारे सोने का समय है ?

इस तरह एक महीना बीत गया। केवलराम भी ऊब उठा। चन्द्रमुखी को स्वयं भी सन्देह होने लगा कि वे यहाँ पर नहीं हैं ; फिर भी आशा-भरोसा में दिन पर दिन बीतने लगे।

कलकत्ते आए हुए डेढ़ महीना हो गया। आज उसके ब्रह्मा प्रसन्न हुए। रात के ग्यारह बज गए थे, हताश मन से वह घर लौट रही थी। इतने ही में देखा, रास्ते के एक ओर एक दरवाज़े के सामने एक आदमी आप ही आप कुछ बड़बड़ा रहा है। इस कण्ठ-स्वर से वह भली-भाँति परिचित थी। करोड़ों लोगों के बीच में भी वह उस स्वर को पहचान सकती थी। उस स्थान पर कुछ अन्धकार था, वहीं पर कोई मनुष्य नशे में चूर पड़ा हुआ था। चन्द्रमुखी ने पास जाकर शरीर पर हाथ रख कर पूछा—तुम कौन हो, जो यहाँ पर इस तरह पड़े हो ?

उस मनुष्य ने ज़ोर से कहा—सुनो तो सही मेरे मन की बातें, यदि पाऊँ मैं अपने स्वामी को।

चन्द्रमुखी को अब और कुछ सन्देह नहीं रहा, उसने पुकारा—देवदास !

देवदास ने उसी त कहा—हूँ !

"यहाँ क्यों पड़े हो, घर चलोगे ?"

"नहीं, अच्छी तरह हूँ।"

"थोड़ी शराब पियोगे ?"

"हाँ, पिऊँगा"—कह कर एकाएक चन्द्रमुखी का गला जकड़ लिया; कहा—"ऐसी भलाई करने वाले तुम कौन हो भाई ?"

चन्द्रमुखी की आँखों से आँसू गिरने लगे। बड़े परिश्रम के साथ गिरते-पड़ते चन्द्रमुखी के कन्धे का सहारा लेकर उठे। कुछ देर मुख की ओर देखने के बाद कहा—भाई, यह बड़ी अच्छी चीज़ है।

चन्द्रमुखी ने आह भरी हँसी हँस कर कहा—हाँ, बड़ी अच्छी चीज़ है। ज़रा मेरे कन्धे का सहारा लेकर कुछ आगे चलो, एक गाड़ी ठीक करनी होगी।

"गाड़ी क्या होगी ?"—रास्ते में आते-आते देवदास ने बैठे हुए गले से कहा—"सुन्दरी, तुम मुझे पहचानती हो ?"

चन्द्रमुखी ने कहा—पहचानती हूँ।

देवदास ने रेघाते हुए कहा—"और लोगों ने तो मुझे भुला दिया है, भाग्य है जो तुम पहचानती हो।"

वदास ने कहा—चन्द्रमुखी,

फिर गाड़ी पर सवार होकर, च... रकारने में कुछ असुविधा

दिए ही घर पर आए। दरवाज़े ... ेना चाहता हूँ।

में हाथ डाल कर कहा—"सुन्दरी, ... ।

किन्तु जेब में कुछ नहीं है।" ... कहके पुकारूँगा।

चन्द्रमुखी ने कोई उत्तर नहीं दिया। ... रने का कोई

पकड़े हुए ऊपर लाकर चारपाई पर लिटा क... सो जाओ।

मेरी

देवदास ने उसी भाँति बैठे हुए गले से कहा—क्या कुछ चाहिए नहीं? मैंने जो कहा कि जेब ख़ाली है—कुछ मिलने की आशा नहीं है। समझी सुन्दरी?

सुन्दरी उसे समझ गई, कहा—कल देना।

देवदास ने कहा—इतना विश्वास तो ठीक नहीं। क्या चाहिए, खुल कर कहो!

चन्द्रमुखी ने कहा—"कल सुनना!"—यह कह कर वह बग़ल के दूसरे कमरे में चली गई।

देवदास की जब नींद टूटी तो दिन चढ़ गया था। घर में कोई नहीं था। चन्द्रमुखी स्नान करके भोजन पकाने की तैयारी में थी। देवदास ने चारों ओर आश्चर्य से देखा कि इस स्थान में वे कभी नहीं आए थे, एक चीज़ भी नहीं पहचान सके। पिछली रात की एक बात भी याद नहीं आती थी; केवल किसी की आन्तरिक सेवा का कुछ-कुछ स्मरण

चन्द्रमुखी को अब और बड़े स्नेह के साथ लाकर सुला
पुकारा—देवदास ! द्रमुखी ने घर में प्रवेश किया। रात
देवदास ने उसी समय बहुत-कुछ परिवर्त्तन हो गया
"यहाँ क्यों पड़ेहने तो अब भी वे ही थे। किन्तु रङ्गीन
"नहीं, अच्छी टीका, मुख में पान का दाग़ आदि कुछ
"थोड़ी । केवल एक धोई हुई श्वेत साड़ी पहने हुए
"हाँ में आई। देवदास चन्द्रमुखी को देख कर खिल
गलए, बोले—कहाँ से कल मुझे यहाँ बुला ले आई ?

चन्द्रमुखी ने कहा—बुला नहीं लाई, रास्ते में तुम्हें पड़ा हुआ देख कर उठा ले आई।

देवदास ने कुछ गम्भीर होकर कहा—अच्छा, यह सब तो जो हुआ सो हुआ ; पर तुम्हें यहाँ कैसे पाता हूँ ? तुम कब आई ? तुम तो गहना नहीं पहनती थीं, फिर कैसे पहनने लगीं।

चन्द्रमुखी ने देवदास के मुख पर एक तीव्र दृष्टि डाल कर कहा—फिर से......!

देवदास ने हँस कर कहा—नहीं-नहीं, यह हो नहीं सकता ; ऐसी हँसी करने में भी दोष है। आई कब ?

चन्द्रमुखी ने कहा—डेढ़ महीना हुआ।

देवदास ने मन ही मन कुछ हिसाब लगाया, फिर कहा—मेरे मकान से लौटने के बाद ही यहाँ पर आई ?

चन्द्रमुखी ने विस्मित होदेवदास ने कहा—चन्द्रमुखा, मेरे जाने की ख़बर तुम्हें कैसे मिलकारने में कुछ असुविधा

देवदास ने कहा—तुम्हारे लौटलेना चाहता हूँ। पर गया था। एक दासी से, जो तुम्हें। ले गई थी, सुनने में आया कि कल अशथभूरुहके पुकारूँगा। बड़ी सुन्दरी स्त्री आई थी। फिर समझना किने का कोई था? किन्तु इतना गहना कहाँ से गढ़ाया?

चन्द्रमुखी ने कहा—गढ़ाया नहीं; ये सब गिलट मेरी गहने हैं, इन्हें कलकत्ते में आकर ख़रीदे हैं। तुम्हें देखने के लिए मैंने कितना फ़िज़ूल-ख़र्च किया है, और कल तो तुम मुझे पहचान भी नहीं सके।

देवदास ने हँस कर कहा—एकबारगी नहीं पहचान सका, कोशिश करने पर पहचाना था। कई बार मन में आया कि चन्द्रमुखी को छोड़ कर मेरी ऐसी सेवा कौन करेगा?

मारे हर्ष के चन्द्रमुखी को रोने की इच्छा हुई। कुछ देर तक चुप रहने के बाद कहा—देवदास, मुझसे अब वैसी घृणा करते हो या नहीं?

देवदास ने जवाब दिया—नहीं, वरन् प्रेम करता हूँ।

दोपहर में स्नान करने के समय चन्द्रमुखी ने देखा कि देवदास की छाती में एक फ़लालेन का टुकड़ा बँधा है। भयभीत होकर पूछा—यह क्या, फ़लालेन क्यों बाँधा है?

चन्द्रमुखी को अब और ती में एक प्रकार की पीड़ा

पुकारा—देवदास ! हो ?

देवदास ने उसी र घुन कर कहा—सर्वनाश करना

"यहाँ क्यों पड़े फेफड़े में पीड़ा है ?

"नहीं, अच्छ हँस कर कहा—"चन्द्रमुखी, ऐसा ही कुछ

"थोड़ी दिन डॉक्टर ने आकर बहुत देर तक परीक्षा

"हाँ बाद यही आशङ्का स्थिर की। औषध लिख दी

गल बताया कि यदि विशेष सावधानतापूर्वक न रहा जायगा, तो भारी अनिष्ट होने की सम्भावना है। दोनों ही ने इसका तात्पर्य समझा। पत्र द्वारा घर से धर्मदास को बुलाया गया और चिकित्सा के लिए बैङ्क से रुपया आया। दो दिन इसी भाँति बीत गए, किन्तु तीसरे दिन ज्वर का आविर्भाव हुआ।

देवदास ने चन्द्रमुखी को बुला कर कहा—"बड़े अच्छे समय से आईं, नहीं तो मुझे यहाँ कौन देखता ?" आँसू पोंछ कर चन्द्रमुखी प्राणपण से सेवा करने बैठी। दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—"भगवान् ऐसे असमय में इतना काम आ पड़ेगा, यह स्वप्न में भी आशा नहीं थी। किन्तु देवदास को शीघ्र अच्छा कर दो।"

प्रायः एक मास से ऊपर देवदास चारपाई पर पड़े रहे, फिर धीरे-धीरे आरोग्य होने लगे। रोग अधिक बढ़ने नहीं पाया।

इसी समय एक दिन देवदास ने कहा—चन्द्रमुखी, तुम्हारा नाम बहुत बड़ा है। पुकारने में कुछ असुविधा सी होती है, इसे थोड़ा छोटा कर देना चाहता हूँ।

चन्द्रमुखी ने कहा—अच्छी बात है।

देवदास ने कहा—आज से तुम्हें बहू कहके पुकारूँगा।

चन्द्रमुखी हँस पड़ी, कहा—इस पुकारने का कोई मतलब भी होना चाहिए।

"क्या सभी बातों का मतलब हुआ करता है? मेरी इच्छा।"

"यदि इच्छा ही है तो कहो। किन्तु यह इच्छा कैसी, यह तो कहो?"

"नहीं, कोई कारण मत पूछो।"

चन्द्रमुखी ने सिर नीचा करके कहा—अच्छी बात है, यही सही।

देवदास ने बहुत देर तक चुप रहने के बाद हठात् गम्भीर भाव से पूछा—अच्छा बहू, तुम मेरी कौन हो, जो इतने प्राणपण से मेरी सेवा करती हो?

चन्द्रमुखी न तो लज्जाशील वधू ही है और न बातचीत में अनभ्यस्त बालिका; देवदास के मुख की ओर स्थिर-शान्त दृष्टि रख कर स्नेह-जड़ित कण्ठ से कहा—तुम मेरे सर्वस्व हो, क्या यह अब भी नहीं समझ सके?

देवदास दीवाल की ओर देख रहे थे। उसी ओर

देखते हुए धीरे-धीरे कहा—"यह सब समझता हूँ, किन्तु इससे आनन्द नहीं मिलता। पार्वती को मैं कितना प्यार करता था और वह भी मुझे कितना प्यार करती थी, पर इससे अन्त में मिला कष्ट ही। बहुत दुःख पाने पर सोचा था कि अब कभी प्रेम के फन्दे में पाँव नहीं दूँगा। जानते हुए दिया भी नहीं। परन्तु तुमने यह क्या किया? ज़ोर देकर फिर उसमें मुझे क्यों फँसाया?"—यह कह कर कुछ क्षण चुप रहने के बाद फिर कहा—"बहू, जान पड़ता है, तुम भी पार्वती की भाँति ही दुःख उठाओगी।"

चन्द्रमुखी मुख पर आँचल देकर चारपाई के एक ओर चुपचाप बैठी रही।

देवदास ने फिर मृदु-कण्ठ से कहना आरम्भ किया—"तुम दोनों में कितनी विषमता है। एक कितनी अभिमानिनी और उद्धत है और दूसरी कितनी शान्त और कितनी संयत है। वह कुछ भी नहीं सह सकती और तुम कितना सहती हो। उसका कितना यश और कितना नाम है और तुम कितनी कलङ्किता हो। सभी उसे प्यार करते हैं, पर तुम्हें कोई प्यार नहीं करता। फिर मैं प्यार करता हूँ—कैसे करता हूँ।"—कह कर एक दीर्घ निःश्वास फेंक कर फिर कहा—"पाप-पुण्य के विचारकर्ता तुम्हारा कैसा विचार करेंगे, यह नहीं कह सकता; पर मृत्यु के बाद यदि मिलन हुआ, तो मैं तुमसे कभी दूर नहीं रहूँगा।"

चन्द्रमुखी भीतर हो —और एक भिक्षा है, तनिक भी
हो गया ; मन ही मन प्रार्थने ख़बर अवश्य देना।
किसी काल या किसी जन्म में ओर देख कर सिर नीचा
प्रायश्चित्त हो जाय तो मुझे इन्हें ही पुरुष।" फिर एक बार
दूरे कमरे में चली

* *

दो महीने बीत गए। देवदास आरोग्य हो
अभी शरीर नहीं भरा। वायु-परिवर्त्तन आवश्यक था।
पश्चिम की ओर जायँगे, साथ में केवल धर्मदास रहेगा।

चन्द्रमुखी ने देवदास का हाथ पकड़ कर कहा—तुम्हें एक दासी भी तो चाहिए—मुझे साथ लेते चलो।

देवदास ने कहा—छिः! यह क्या हो सकता है। और जो चाहे सो करूँ, परन्तु इतनी बड़ी निर्लज्जता नहीं कर सकता।

चन्द्रमुखी चुप हो रही। वह अबूझ नहीं है, सब बातें सहज ही समझ गई, और जो हो, पर इस संसार में उसका सम्मान नहीं है, उसके रहने से देवदास की अच्छी सेवा होगी, सुख मिलेगा; किन्तु कहीं भी सम्मान नहीं मिलेगा। आँख पोंछ कर कहा—अब फिर कब देख सकूँगी?

देवदास ने कहा—यह नहीं कह सकता। चाहे कहीं भी होऊँ, परन्तु तुम्हें भूलूँगा नहीं, तुम्हें देखने की तृष्णा कभी मिटेगी नहीं।

देखते हुए धीरे-धीरे कहा—"यह स
इससे आनन्द नहीं मिलता। प ाग खड़ी हो गई। मन ही
करता था और वह भी मुझे यथेष्ट है, इससे अधिक आशा
इससे अन्त में मिला क
था कि अब कभी देवदास ने चन्द्रमुखी के हाथ में और
हुए दिया भी र रख कर कहा—इन्हें रक्खो। मनुष्य के
देकर फि कोई विश्वास नहीं, पीछे तुम दुःख-सुख में
के आगे हाथ पसारोगी?
लगा

चन्द्रमुखी ने इसे भी समझा, इसी से रुपया ग्रहण कर लिया। आँसू पोंछ कर पूछा—तुम एक बात मुझे बताए जाओ।

देवदास ने मुख की ओर देख कर कहा—क्या?

चन्द्रमुखी ने कहा—बड़ी बहू—तुम्हारी भाभी—ने कहा था कि तुम्हारे शरीर में बुरा रोग उत्पन्न हो गया है, यह क्या सच है?

प्रश्न सुन कर देवदास को दुःख हुआ, कहा—बड़ी बहू सब कह सकती हैं; किन्तु क्या तुम नहीं जानतीं? मेरा कौन सा भेद तुम नहीं जानतीं? एक विषय में तो तुम पार्वती से भी बढ़ी हुई हो।

चन्द्रमुखी ने एक बार आँख पोंछ कर कहा—सब समझ गई। परन्तु फिर भी खूब सावधानी से रहना। तुम्हारा शरीर निर्बल है, देखो किसी प्रकार की त्रुटि न होने पावे। प्रत्युत्तर में देवदास ने केवल हँस दिया, कुछ कहा नहीं।

चन्द्रमुखी ने कहा—और एक भिक्षा है, तनिक भी तबीयत ख़राब होने पर मुझे ख़बर अवश्य देना।

देवदास ने उसके मुख की ओर देख कर सिर नीचा करके कहा—"दूँगा—अवश्य दूँगा बहू।" फिर एक बार प्रणाम करके चन्द्रमुखी रोती हुई दूसरे कमरे में चली गई।

सोलहवाँ परिच्छेद

कलकत्ते से आकर देवदास कुछ दिन इलाहाबाद रहे। उसी बीच में उन्होंने चन्द्रमुखी को एक चिट्ठी लिखी—"बहू, मैंने विचार किया है कि अब किसी से प्रेम न करूँगा। एक तो प्रेम करके ख़ाली हाथ लौटने से बड़ी यातना मिलती है, दूसरे इस संसार में प्रेम का पथ ही दुःख और दैन्य से पूर्ण है।"

इसके उत्तर में चन्द्रमुखी ने क्या लिखा, इसके लिखने की यहाँ आवश्यकता नहीं है; पर इस समय देवदास मन ही मन केवल यही सोचते रहते थे कि एक बार उसका यहाँ आना ठीक होगा या नहीं?

दूसरे ही क्षण सोचते—नहीं-नहीं कोई काम नहीं है। यदि किसी दिन पार्वती सुन लेगी, तो क्या कहेगी! इस

भाँति कभी पार्वती और कभी चन्द्रमुखी उसके हृदय-आवास में वास करती थीं। और कभी दोनों के ही सुख एक साथ उसके हृदय-पट पर अङ्कित होते थे, मानो दोनों पर ही अथाह अनुराग हो। हृदय में दोनों ही आस-पास निवास करती थीं। किसी दिन वे सहसा सोचते थे कि वे दोनों ही मानो सो गई हैं। इस समय उनका हृदय ऐसा शून्य हो जाता था कि केवल एक निर्जीव अतृप्ति उनके हृदय में मिथ्या प्रतिध्वनि की भाति गूँज उठती थी। इसके बाद देवदास लाहौर चले गए। यहाँ चुन्नीलाल नौकरी करते थे; ख़बर पाकर भेंट करने के लिए आए। बहुत दिनों के बाद आज दोनों मित्र एक दूसरे को देख कर लज्जित और साथ ही सुखी हुए। फिर देवदास ने शराब पीना शुरू किया। चन्द्रमुखी की छाया उनके मन में बनी हुई थी; उसने शराब का निषेध किया था। सोचते, वह कितनी बड़ी बुद्धिमती है! कैसी धीरा और शान्त है, कितना उसका स्नेह है! पार्वती इस समय स्वप्नवत् विस्मृत हो रही थी—केवल बुझते हुए दीप के समान जब-तब उसकी स्मृति भभक उठती थी। परन्तु यहाँ का जल-वायु उनके अनुकूल नहीं पड़ा। बीच-बीच में बीमार पड़ने लगे, छाती में फिर कड़क जान पड़ती थी। धर्मदास ने एक दिन रोते-रोते कहा—देवता, तुम्हारा शरीर फिर गिर चला, इसलिए और कहीं चलो।

देवदास ने अनमने भाव से जवाब दिया—अच्छा, चला जायगा।

देवदास प्रायः घर पर शराब नहीं पीते। किसी दिन चुन्नीलाल के आने पर पीते हैं और किसी दिन बाहर चले जाते हैं। रात के तीसरे-चौथे पहर घर लौटते थे और किसी-किसी दिन नहीं भी आते थे। आज दो दिन से उनका पता नहीं है। मारे शोक के धर्मदास ने अब तक अन्न-जल भी नहीं ग्रहण किया। तीसरे दिन वे ज्वर लेकर घर लौटे। चारपाई पकड़ ली। तीन डॉक्टरों ने आकर चिकित्सा आरम्भ की।

धर्मदास ने पूछा—देवता, काशी में माँ को यह ख़बर भेज दूँ?

देवदास ने तत्काल बाधा देकर कहा—छिः-छिः! माँ को क्या यह मुँह दिखाने लायक़ है?

धर्मदास ने इसके प्रतिवाद में कहा—रोग-शोक तो सभी को होते हैं, पर क्या इसीसे इतने बड़े दुःख को माँ से छिपाया जा सकता है? तुम्हें कोई लज्जा नहीं है देवता, काशी चलो।

देवदास ने मुँह फिरा कर कहा—नहीं धर्मदास, इस समय उनके पास नहीं जा सकूँगा। अच्छा होने के बाद देखा जायगा।

धर्मदास ने मन में सोचा कि चन्द्रमुखी की चर्चा

करे; किन्तु वह स्वयं ही उससे इतनी घृणा करता था कि यह विचार उठने पर भी वह चुप हो रहा।

देवदास की चन्द्रमुखी को बुलाने की स्वयं भी इच्छा होती थी, पर कुछ कह नहीं सकते थे। अस्तु, कोई आया नहीं। कुछ दिन के बाद वे धीरे-धीरे आरोग्य होने लगे। एक दिन उन्होंने धर्मदास से कहा—अगर तुम्हारी इच्छा हो तो चलो इस बार और कहीं चला जाय।

"इस समय और कहीं चलने की ज़रूरत नहीं है, अगर हो सके तो घर चलो, नहीं तो माँ के पास चलो।"

माल-असबाब बाँध कर, चुन्नीलाल से बिदा लेकर, देवदास फिर इलाहाबाद चले आए। शरीर इस समय भला-भाँति अच्छा हो गया था। कुछ दिन रहने के बाद उन्होंने एक दिन धर्मदास से कहा—धर्म, किसी नई जगह नहीं चलोगे? अभी तक बम्बई नहीं देखी है, वहाँ चलोगे?

उनका अतिशय आग्रह देख कर, इच्छा न रहते हुए भी, धर्मदास बम्बई चलने के लिए तैयार हो गया। जेठ का महीना था। बम्बई शहर औरों की अपेक्षा उतना गर्म नहीं है। यहाँ आकर देवदास को बहुत-कुछ आराम मिला।

एक दिन धर्मदास ने कहा—यहाँ रहते बहुत दिन हो गए, अब घर चलना अच्छा होगा।

देवदास ने कहा—नहीं, यहाँ अच्छी तरह हूँ। अभी कुछ दिन यहाँ और रहूँगा।

*　　　*　　　*

एक वर्ष बीत गया। भादों का महीना था। एक दिन प्रातःकाल देवदास धर्मदास के कन्धे के सहारे से बम्बई-अस्पताल से बाहर आकर गाड़ी पर बैठे। धर्मदास ने कहा—देवता, मेरी सलाह से इस समय माँ के पास चलना अच्छा होगा।

देवदास की दोनों आँखें डबडबा आईं। आज कई दिन से वे भी माँ को स्मरण कर रहे थे। अस्पताल में पड़े-पड़े वे जब-तब यही सोचते थे कि इस संसार में उनके सभी हैं, और कोई भी नहीं है। उनके माँ है, बड़ा भाई है, बहिन से बढ़ कर पार्वती है, चन्द्रमुखी भी है। उनके सभी हैं, पर वे किसी के नहीं हैं। धर्मदास रोने लगा; कहा—भाई इससे यही अच्छा है कि माँ के पास चलो।

देवदास ने मुँह फेर कर आँसू पोंछ कर कहा—नहीं धर्मदास, माँ को मुँह दिखाने लायक़ नहीं हूँ। जान पड़ता है, अभी मेरा समय नहीं आया।

वृद्ध धर्मदास फूट-फूट कर रोने लगा, कहा—भैया, अभी तो माँ जीती ही हैं।

इस बात में कितना भाव भरा हुआ था। इसका उन्हीं दोनों की अन्तरात्मा अनुभव कर सकीं। देव-

दास की अवस्था इस समय बड़ी शोचनीय थी। सारे पेट को प्लीहा और फेफड़े ने छेंक लिया था; उस पर ज्वर और खाँसी का प्रबल प्रकोप था। शरीर का रङ्ग एकदम काला पड़ गया था; केवल ठठरी-मात्र बच रही थी। आँखें भीतर की ओर घुस गईं थीं, उनमें एक प्रकार की अस्वाभाविक उज्ज्वलता चमका करती थी। सिर के बाल बड़े रूखे-रूखे हो रहे थे, सम्भवतः चेष्टा करने से गिने भी जा सकते थे। हाथ की उँगलियों को देखने से घृणा उत्पन्न होती थी—एक तो वे नितान्त दुबली-पतली, दूसरे कुत्सित रोगों के दाग़ से ख़राब हो गईं थीं। स्टेशन पर आकर धर्मदास ने पूछा—कहाँ का टिकट कटाया जायगा देवता?

देवदास ने कुछ सोच कर कहा—चलो पहले घर चलें, फिर देखा जायगा।

गाड़ी प्लेटफ़ॉर्म पर आई। वे लोग हुगली का टिकट ख़रीद कर चढ़ गए। धर्मदास देवदास के पास ही रहा। सन्ध्या के कुछ पहले ही देवदास की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। धीरे-धीरे धुआँधार बुख़ार चढ़ आया। उन्होंने धर्मदास को बुला कर कहा—धर्मदास, आज ऐसा मालूम पड़ता है कि घर भी पहुँचना कठिन होगा।

धर्मदास ने डर कर कहा—क्यों भैया?

देवदास ने हँसने की चेष्टा करके कहा—फिर बुख़ार चढ़ आया, धर्मदास।

काशी को गाड़ी पार कर गई तब तक देवदास अचेत थे। पटना के पास आकर जब उन्हें होश हुआ, तो कहा—तब तो धर्मदास, माँ के पास सचमुच नहीं जा सके।

धर्मदास ने कहा—चलो भैया, पटना में उतर कर हम डॉक्टर को दिखा लें।

उत्तर में देवदास ने कहा—रहने दो, अब हम लोग घर पर ही चल कर उतरेंगे।

गाड़ी जब पण्डुवा स्टेशन पर आकर खड़ी हुई, तब पौ फट चुकी थी। रात भर ख़ूब वर्षा हुई थी, अभी थोड़ी देर हुई थमी है। देवदास उठ खड़े हुए। नीचे धर्मदास सोया हुआ था। धीरे से उसके सिर पर हाथ रक्खा, किन्तु लज्जावश जगा नहीं सके। फिर द्वार खोल कर धीरे से नीचे प्लेटफ़ॉर्म पर उतर गए। गाड़ी सोए हुए धर्मदास को लेकर चली गई। काँपते-काँपते देवदास स्टेशन के बाहर आए। एक गाड़ीवान को बुला कर पूछा—क्या हाथीपोता चल सकता है?

उसने एक बार मुँह की ओर, फिर एक बार इधर-उधर देख कर कहा—नहीं बाबू, रास्ता अच्छा नहीं है। घोड़े की गाड़ी ऐसे कीचड़-पानी में उधर नहीं जा सकेगी।

देवदास ने उद्विग्न होकर पूछा—क्या पालकी मिल सकती है?

गाड़ीवान ने कहा—नहीं।

देवदास इसी आशङ्का में धप से बैठ गए कि क्या तब नहीं जाना होगा? उनके मुख से उनकी अन्तिम अवस्था के चिन्ह सुस्पष्ट प्रकट हो रहे थे। एक अन्धा भी उसे भली-भाँति देख सकता था।

गाड़ीवान ने दयार्द्र होकर पूछा—बाबू जी, एक बैल-गाड़ी ठीक कर दें?

देवदास ने पूछा—कब पहुँचूँगा?

गाड़ीवान ने कहा—रास्ता अच्छा नहीं है, इससे शायद दो दिन लग जायगे।

देवदास मन ही मन हिसाब लगाने लगे कि दो दिन जीते रहेंगे या नहीं? पर पार्वती के पास जाना ज़रूरी है। इस समय उनके मन में पिछले दिनों के बहुत से झूठे आचार-व्यवहार और बहुत सी झूठी बातें एक-एक करके स्मरण आने लगीं। किन्तु अन्तिम दिन की इस प्रतिज्ञा को सच करनी ही होगी। चाहे जिस तरह से हो, एक बार उसे दर्शन देना ही होगा। पर अब इस जीवन की अधिक मियाद बाक़ी नहीं है, इसी की विशेष चिन्ता है।

देवदास जब बैलगाड़ी में बैठ गए, तो उन्हें माता का ध्यान आया। वे व्याकुल होकर रो पड़े। जीवन के इस अन्तिम समय में एक और स्नेहमयी पवित्र प्रतिमा की छाया दिखाई पड़ी—यह छाया चन्द्रमुखी की थी। जिसे

पापिष्ठा कह कर सर्वदा घृणा की, आज उसी को जननी की बग़ल में गौरवमय आसन पर आसीन देख उनकी आँखों से झर-झर जल झरने लगा। अब इस जीवन में उससे फिर कभी भेंट नहीं होगी और तो क्या वह बहुत दिन तक उनके विषय में कोई ख़बर तक न पाएगी। तब भी पार्वती के पास चलना होगा! देवदास ने प्रतिज्ञा की थी कि एक बार वे और भेंट करेंगे। आज उस प्रतिज्ञा को पूर्ण करना होगा। रास्ता अच्छा नहीं है। वर्षा के कारण कहीं-कहीं जल जमा हो गया है और कहीं अगल-बग़ल की पगडण्डी कट कर गिर पड़ी हैं। सारा रास्ता कीचड़ से भरा हुआ है। बैलगाड़ी हचक-हचक कर चलती है। कहीं उतर कर चक्का ठेलना पड़ता है, कहीं बैलों को बेरहमी के साथ मारना पड़ता है—चाहे जिस तरह से हो; यह सोलह कोस का रास्ता तय करना ही होगा! हर-हर करके ठण्ढी हवा बह रही थी। आज भी उन्हें सन्ध्या के बाद विषम ज्वर चढ़ आया। उन्होंने डर कर पूछा—गाड़ीवान, और कितना चलना होगा?

गाड़ीवान ने जवाब दिया—बाबू, अभी आठ-दस कोस और चलना है।

"जल्दी ले चलो, तुम्हें अच्छा इनाम मिलेगा।"—जेब में सौ रुपए का नोट था, उसी को दिखा कर कहा—"जल्दी चलो, सौ रुपए इनाम दूँगा।"

इसके बाद कब और किस भाँति सारी रात बीत गई—देवदास को इसकी ख़बर नहीं। बराबर अचेत रहे। सुबह जब ज्ञान हुआ तो कहा—अरे अभी कितनी दूर है? क्या इस रास्ते का अन्त नहीं होगा?

गाड़ीवान ने कहा—"अभी छः कोस है।" देवदास ने एक गहरी साँस लेकर कहा—"ज़रा जल्दी चलो, अब समय नहीं है।"

गाड़ीवान इसे समझ नहीं सका, किन्तु नए उत्साह से बैलों को ठोंक-ठठा कर और गाली-गलौज देकर हाँकने लगा। प्राणपण से गाड़ी चल रही थी, भीतर देवदास छटपटा रहे थे—एकमात्र यही विचार चक्कर लगा रहा था कि भेंट होगी वा नहीं? पहुँच सकेंगे वा नहीं?" दोपहर के समय गाड़ी खड़ी हुई, गाड़ीवान ने बैलों को भूसी खाने को दी, स्वयं भी दाना-पानी किया। फिर पूछा—बाबू, आप कुछ अन्न-जल नहीं करेंगे?

"नहीं, बड़ी प्यास लगी है, थोड़ा पानी दे सकते हो?"

उसने पास की पोखरी से पानी ला दिया। आज सन्ध्या के बाद बुख़ार के साथ देवदास की नाक की राह से बूँद-बूँद करके ख़ून गिरने लगा। उन्होंने भर-ज़ोर नाक को दबाया। फिर मालूम हुआ कि दाँत के पास से ख़ून बाहर आ रहा है। साँस के लेने में भी कष्ट होने लगा। हाँफते-हाँफते कहा—और कितनी दूर...?

गाड़ीवान ने कहा—और दो कोस है। रात के दस बजे पहुँचेंगे।

देवदास ने बड़े कष्ट के साथ रास्ते की ओर देख कर कहा—भगवन्!

गाड़ीवान ने पूछा—बाबू, कैसी तबीयत है?

देवदास इस बात का जवाब नहीं दे सके। गाड़ी चलने लगी, पर दस बजे नहीं पहुँची। लगभग बारह बजे रात को गाड़ी हाथीपोता के ज़मीन्दार के मकान के सामने पीपल के पेड़ के नीचे आकर खड़ी हुई।

गाड़ीवान ने बुला कर कहा—बाबू, नीचे उतरिए।

कोई उत्तर नहीं मिला। फिर बुलाया, तब भी कोई उत्तर नहीं मिला। तब उसने डर कर मुँह के पास दिया लाकर देखा, कहा—बाबू, क्या सो गए हैं?

देवदास देख रहे थे, ओठ हिला कर कुछ कहा किन्तु कोई शब्द नहीं हुआ। गाड़ीवान ने फिर बुलाया—बाबू!

देवदास ने हाथ उठाना चाहा, किन्तु उठा नहीं सके; केवल दो बूँद आँसू उनकी आँख के कोण से बाहर ढुलक पड़े। गाड़ीवान ने तब अपनी बुद्धि के अनुसार बाँसों को बाँध कर एक पलँग बनाया; उसी पर बिस्तर बिछा कर बड़े कष्ट से देवदास को लाकर सुला दिया। बाहर एक मनुष्य भी दिखाई नहीं पड़ता था। ज़मीन्दार

के घर में सब लोग सो रहे थे। देवदास ने अपनी जेब से बड़े कष्ट से सौ रुपए का एक नोट बाहर निकाला। लालटेन की रोशनी में गाड़ीवान ने देखा कि बाबू उसी की ओर देख रहे हैं, परन्तु कुछ कह नहीं सकते हैं। उसने अवस्था देख कर नोट लेकर चादर में बाँध लिया। शाल से देवदास का सारा शरीर ढँका था, सामने लालटेन जल रही थी और पास में नया साथी गाड़ीवान बैठा था।

पौ फटी। सुबह के समय ज़मीन्दार के घर से लोग बाहर निकले। एक आश्चर्यमय दृश्य था! पेड़ के नीचे एक आदमी मर रहा था। देखने से सद्कुल का जान पड़ता था। शरीर पर शाल, पाँव में चमकता हुआ जूता, हाथ में अँगूठी पड़ी हुई थी। एक-एक कर के बहुत से लोग ज़मा हो गए। क्रम से भुवन बाबू के कान तक यह बात पहुँची, वे डॉक्टर को साथ लेकर स्वयं आए। देवदास ने सबकी ओर देखा; किन्तु उनका कण्ठ रुद्ध हो गया था—एक बात भी नहीं कह सके, केवल आँखों से जल बहता रहा। गाड़ीवान जो कुछ जानता था, कह सुनाया, परन्तु उससे कुछ विशेष बातें नहीं मालूम हुईं। डॉक्टर ने कहा—उर्ध्व श्वास चल रहा है, अब शीघ्र ही मृत्यु होगी।

सबने कहा—आह!

घर में ऊपर बैठी हुई पार्वती ने भी यह दयनी कहानी सुन कर कहा—आह!

किसी एक आदमी ने तर्स खाकर दो बूँद जल औ तुलसी की पत्ती मुँह में छोड़ दी। देवदास ने ए बार उसकी ओर करुण-दृष्टि से देखा, फिर आँखें मूँ लीं। कुछ क्षण साँस चलती रही, फिर सर्वदा के लिए सब शान्त हो गया। अब कौन दाह-कर्म करेगा, कौन छुएगा, कौन जाति है आदि विविध प्रश्नों को लेकर तर्क वितर्क होने लगा। भुवन बाबू ने पास के पुलिस-स्टेशन में इसकी ख़बर दी। इन्सपेक्टर आकर जाँच-पड़ताल करने लगे। फोड़ा और फेफड़े के बढ़ने के कारण मृत्यु हुई है, नाक और मुख में ख़ून के दाग लगे हैं। जेब से दो पत्र निकले। एक तालसोनापुर के द्विजदास मुखोपाध्याय ने बम्बई के देवदास को लिखा था कि रुपए का इस समय प्रबन्ध नहीं हो सकता। और एक काशी से हरिमती देवी ने उक्त देवदास को लिखा था कि कैसे हो?

बाएँ हाथ में अङ्गरेज़ी में नाम का पहला अक्षर गुदा हुआ था। इन्सपेक्टर ने निश्चित करके कहा—यह मनुष्य देवदास है।

हाथ में एक नीलम की अँगूठी थी—दाम अन्दाज़न् डेढ़ सौ था। शरीर पर एक जोड़ा शाल था—दाम अन्दाज़न् दो सौ था। कोट, क़मीज़, धोती आदि सब

लिखे गए। चौधरी जी और महेन्द्रनाथ दोनों ही वहाँ पर उपस्थित थे। तालसोनापुर का नाम सुन कर महेन्द्र ने कहा—छोटी माँ के मायके के तो नहीं...

चौधरी जी ने तुरन्त बात काट कर कहा—वह क्या यहाँ पर शिनाख़्त करने आवेंगी ?

दारोग़ा साहब ने हँस कर कहा—कुछ पागल तो नहीं हो।

ब्राह्मण का मृत-देह होने पर भी गाँव के किसी ने स्पर्श करना स्वीकार नहीं किया, अतएव चाण्डाल आकर बाँध ले गए। फिर किसी सूखे हुए पोखरे के किनारे आधे झुलसे हुए शरीर को फेंक दिया, कौए और गिद्ध उस पर आकर बैठ गए, सियार और कुत्ते परस्पर कलह में प्रवृत्त हुए। तब भी जिस किसी ने सुना, कहा—"आह!" दास-दासी भी जहाँ-तहाँ इसकी चरचा करने लगे—कोई बड़े आदमी थे ! दो सौ रुपए का शाल, डेढ़ सौ रुपए की अँगूठी, सब दारोग़ा के पास जमा हैं ; दो चिट्ठी थीं वे भी उन्हीं लोगों ने रख ली है।

यह सब समाचार पार्वती के कान तक भी पहुँचे; किन्तु वह आजकल बड़ी अनमनी रहती है, किसी विषय पर विशेष ध्यान नहीं देती। अस्तु, इस व्यापार के विषय में भी कुछ ठीक नहीं समझ सकी। पर जब सभी के मुख पर इस चरचा को पाया तो पार्वती ने भी इसके विषय

में कुछ विशेष जानने की इच्छा से एक दासी से पूछा
क्या हुआ है ? कौन मरा है ?

दासी ने कहा—आह, यह कोई नहीं जानता म
पिछले जन्म का कोई यहाँ की मिट्टी का धरता था, व
यहाँ केवल मरने आया था। कल सारी रात यहीं
पड़ा रहा—आज सुबह मर गया।

पार्वती ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—क्या उस
बारे में कोई कुछ नहीं जानता ?

दासी ने कहा—महेन्द्र बाबू जानते होंगे, मैं कुछ न
जानती।

महेन्द्र की बुलाहट हुई। उन्होंने कहा—तुम्हारे दे
के देवदास मुखोपाध्याय थे।

पार्वती महेन्द्र के अत्यन्त निकट सरक आईं ; एक ती
दृष्टि से देख कर पूछा—क्या देव दादा ? कैसे जाना ?

"जेब में दो चिट्ठियाँ थीं—एक द्विजदास की"......

पार्वती ने बाधा देकर कहा—हाँ, उनके बड़े भाई की

"और एक काशी से हरिमती देवी ने लिखा था......

"हाँ, वे माँ हैं।"

"हाथ पर नाम गुदा था......"

पार्वती ने कहा—हाँ, जब पहले पहल कलकत्ता
गए थे तो लिखाया था।

"एक नीलम की अँगूठी थी......"

"पिता के समय में उसे बड़े चाचा ने दिया था।...
जाऊँगी......"

कहते-कहते पार्वती दौड़ पड़ी। महेन्द्र ने हतबुद्धि
होकर कहा—ओ माँ, कहाँ जाओगी ?

"देवदास के पास।"

"वे अब नहीं हैं, डोम ले गए।"

"अरे बाप रे बाप।"—कह कर रोती-रोती पार्वती
दौड़ी। महेन्द्र ने दौड़ कर सामने आकर बाधा दी। कहा—
"क्या पागल हुई हो माँ ? कहाँ जाओगी ?" पार्वती ने महेन्द्र
की ओर एक तीव्र दृष्टि से देख कर कहा—"महेन्द्र, क्या
मुझे सचमुच पागल समझ रक्खा है ? रास्ता छोड़ो।"

उसकी ओर देख कर महेन्द्र ने रास्ता छोड़ दिया—
चुपचाप पीछे-पीछे चलने लगा। बाहर तब भी नायब-
गुमाश्ता आदि काम कर रहे थे। वे लोग देखने लगे।
चौधरी जी ने चश्मा लगा कर पूछा—कौन जा रहा है ?

महेन्द्र ने कहा—छोटी माँ।

"यह क्यों ? कहाँ जाती हैं ?"

महेन्द्र ने कहा—देवदास को देखने।

भुवन चौधरी ने चिल्ला कर कहा—तुम सभों की बुद्धि
मारी गई है ! पकड़ो—पकड़ो; पकड़ कर उसे ले आओ।
सब पागल हो गए ! ओ महेन्द्र जल्दी करो—दौड़ो !

इसके बाद नौकर-नौकरानियों ने मिल कर पार्वती

को पकड़ा और उसकी मूर्च्छित देह को भीतर ले
दूसरे दिन उसकी मूर्च्छा टूटी, पर उसने कोई बा
कही; केवल एक दासी को बुला कर पूछा—रात
आप थे या नहीं? सारी रात......!

इसके बाद पार्वती चुप हो रही।

अब इतने दिनों बाद पार्वती का क्या हुआ, क
है, यह हम नहीं जानते; जानने की इच्छा भी नहीं
केवल देवदास के लिए हृदय बहुत क्षुब्ध रहता है
लोगों में से भी जो इस कहानी को पढ़ेंगे, सम्भव
ही समान क्षुब्ध होंगे। फिर भी यदि देवदास के
हतभाग्य, असंयमी और पापिष्ठ के साथ किसी व
चय हो तो वह उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करे—
करे कि और चाहे जो हो, पर उनकी जैसी कि
मृत्यु न हो! मृत्यु होने में कोई हानि नहीं है, कि
समय एक स्नेहमय हाथ का स्पर्श सिर पर अवश्य
एक करुणार्द्र मुख को देखते-देखते इस जीवन क
हो। मरने के समय जिसमें किसी की आँखों का
जल देख कर वह शान्ति से मर सके।

॥ समाप्त ॥